भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय : विषयवस्तु

इकाई की रूपरेखा

भूमिका :

उद्देश्य :

4.1.1 भारतीय दर्शन-एक परिचय

4.1.2 भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय चार्वाक दर्शन

4.1.3 जैन दर्शन : विषय वस्तु

4.1.4 बौद्ध दर्शन : विषय वस्तु

4.1.5 न्याय दर्शन

4.1.6 वैयेषिक दर्शन

4.1.7 सॉध्य दर्शन एवं योग दर्शन

4.1.8 मीमांसा दर्शन

4.1.9.1 वेदान्त दर्शन

4.1.9.2 रामानुज वेदान्त : विशिष्टाद्वैव दर्शन

सारांश

शब्दावली

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

उपयोगी ग्रन्थ

NOTES

आत्मरक्षा की प्रवृत्ति मनुष्य और पशु समाज दोनों की सामान्य विशेषता है। पशुओं का जीवन प्रायः निरुद्देश्य होता है। उनके समस्त क्रियाकलाप और व्यवहार सहज प्रवृत्तियों और संवेगों द्वारा निर्धारित होते हैं। स्पष्ट है कि पशुओं के कार्यव्यवहार में कोई कार्ययोजना नहीं पायी जाती है। वहीं मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है। उसके कार्यव्यवहार प्रवृत्तियों एवं संवेगों द्वारा संचालित नहीं होते हैं। बहुत से कार्यों को चाहते हुये भी वह नहीं करता है और बहुत से ऐसे कत्रव्य/कार्य हैं जिसे न चाहते हुये भी मनुष्य को करने पड़ते हैं। मनुष्य एक बौद्धिक प्राणी है। अपने बुद्धि तत्व के बल पर वह अपना तथा संसार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर वह उसके अनुसार जीवन-यापन करना चाहता है। वह केवल अपने वत्रमान जीवन को ही सुखमय नहीं बनाना चाहता बल्कि कभी-कभी भविष्य जीवन में दीर्घकालीन सुख प्राप्ति हेतु वत्रमान के क्षणिक सुख का परित्याग भी कर देता है। मनुष्य जीवन की यह सम्पूर्ण कार्ययोजना और व्यवहार उसकी बुद्धि द्वारा ही संचालित या निर्णीत होते हैं। स्पष्ट है बुद्धि की सहायता से वह युक्तिपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। युक्तिपूर्वक तत्व ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न को ही दर्शन कहा जाता है।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में दर्शन शब्द के लिये पृथक-पृथक शब्दों का प्रयोग किया गया है और उसके निहितार्थ भी अलग-अलग है। पाश्चात्य दर्शन में 'दर्शन' शब्द के लिये 'Philosophy' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'फिलासफी' शब्द दो ग्रीक शब्दों फाइलास (Philos) और सोफिया (Sophia) शब्द से बना है। फाइलास का अर्थ अवराग और सोफिया का अर्थ ज्ञान है। इस प्रकार फिलासफी का अर्थ ज्ञान के प्रति अनुराग है। इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि पाश्चात्य जगत के लिये फिलासफी एक बौद्धिक व्यायाम या विलास की वस्तु है। उसका जीवन से कोई घनिष्ठ सम्बंध नहीं है। यद्यपि पाश्चात्य दर्शन में कुछ ऐसे दार्शनिक अवश्य हुये हैं जिन्होंने 'फिलासफी' को व्यावहारिक जीवन से सम्बद्ध करने की चेष्टा की

है परन्तु अधिकांश दार्शनिकों के लिये 'फिलासफी' एक बौद्धिक विलास की ही वस्तु रही है।

NOTES

भारतीय दर्शन में दर्शन, बौद्धिक विलास का माध्यम न होकर दुःखों से मुक्ति प्राप्त करने का साधन है। परिणामस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। ईशावास्योपनिषद में वर्णित है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्

तत्वम् पूषण अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।"

अर्थात् अदित्यमण्ल-स्थ ब्रह्म का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका है। हे पूषन्! मुझ सत्यधर्मा को आत्म की उपलब्धि कराने के लिये तू उसे उघाड़ दे, अर्थात् उस पात्र को सामने से हटा दे। स्पष्ट है कि दर्शन का मुख्य कार्य सत्य के स्वरूप का अनावरण करना है। परम सत्य या परम तत्व भारतीय दर्शन में एकमात्र ब्रह्म या आत्मा को माना गया है। आत्मदर्शन या ब्रह्म दर्शन का एकमात्र फल है : अमरत्व की प्राप्ति-'विद्यायामृतमश्नुते'।

उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई में हम आपके समक्ष भारतीय दर्शन का पिरचयात्मक खाका प्रस्तुत कर रहे हैं। भारतीय दर्शन को आस्तिक और नास्तिक इन दो सम्प्रदायों में मुख्य रूप से विभाजित किया जा सकता है। विभाजन का यह आधाद वेदों की प्रामाणिकता मानने या न मानने के संदर्भ में है। जो दर्शन व्रदों को प्रमाण नहीं मानते, वेदों की निन्दा करते हैं वे नास्तिक संवर्ग में आते हैं और जो दर्शन वेदों को प्रमाण मानते हैं। उनको श्रद्धा या आदर का विषय मानते हैं वे आस्तिक कहलाते हैं। न्याय, वैशेषिक, सॉख्य योग, मीमांसा और वेदान्त आस्तिक दर्शनों की कोटि में आते हैं। प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य पाठ्कों को भारतीय दर्शन के विविध सम्प्रदायों की परिचयात्मक जानकारी प्रदान करना है। इस इकाई को पढ़कर आप भारतीय दर्शन के आस्तिक एवं नास्तिक सम्प्रदायों की मान्यताओं और विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

NOTES

4.1.1 भारतीय दर्शन : एक परिचय

भारतीय दर्शन का एक समन्वयात्मक स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो सके, इस हेतु भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताओं से पाठकों को अवगत कराना अनिवार्य है। इस तथ्य को लक्ष्यगत रखते हुये यहाँ पर भारतीय दर्शन की प्रमुख विशेषताओं कासंक्षेप में वर्णन किया जा रहा है-

प्रायः समस्त भारतीय दर्शन में दर्शन को तत्व साक्षात्कार या मोक्ष का माध्यम माना गया है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर लगभग सभी भारतीय दर्शनों का उद्देश्य दर्शन के माध्यम से तत्व साक्षात्कार करना है। अतः जीवन के लक्ष्य को समझने के लिये दर्शन का परिशीलन नितान्त आवश्यक है। दर्शन का उद्देश्य केवल मानसिक कौतुहल की निवृत्ति नहीं है बल्कि किस प्रकार मनुष्य दूर दृष्टि, भविष्य दृष्टि तथा अन्त्रदृष्टि के साथ जीवन यापन कर सके-इसी की शिक्षा देना है।

प्रायः समस्त भारतीय दार्शनिक इस बात पर एकमत हैं कि आध्यात्मिक असंतोष से ही दर्शन की उत्पत्ति होती है। भौतिक भोगों तथा आकर्षणों से युक्त यह चाकि्चिक्य पूर्ण जगत नश्वर और दुःखमय है। जीवन में निःसंदेह थोड़े, बहुत सुख भी हैं परन्तु एक तो वे क्षणिक हैं दूसरे प्रत्येक सुख के साथ यह दुश्चिंता हमेशा बनी रहती है कि वे कभी भी और किसी भी समय समाप्त हो सकते हैं। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा है कि सम्पूर्ण संचार दुःखमय और आनात्मस्वरूप है। मनुष्य के दुःखों का मूल कारण क्या है इसे जानने के लिए भारत के सभी दर्शन प्रयत्न करते हैं। दुःखों का किस तरह से नाश हो-इसके लिये सभी दर्शन संसार तथा मनुष्य के अन्तर्निहित तत्वों का अनुसंधान करते हैं।

भारतीयों में एक आध्यात्मिक मनोवृत्ति है जिससे वे सर्वथा निराश नहीं होते वरन् इसके कारण उनमें आशा का संचार होता रहता है इसे हम अध्यात्मवाद कह सकते हैं। अध्यात्मवाद अर्थात् वहविचारधारा जो यह विश्वास दिलाती है कि जगत में एक शाश्वत् नैतिक व्यवस्था है जो नैतिक नियमों के अनुकूल जगत का संचालन पालन और पोषण करती है।

NOTES

भारत के सभी आस्तिक और नास्तिक दर्शन (चार्वाक को छोड़कर) कर्मवाद में विश्वास करते हैं। कर्मवाद की मान्यता के अनुसार प्रत्येक जीव को स्वयं द्वारा किये गये अच्छे और बुरे कर्मों का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है। साथ ही बिना किये हुये (अकृत) कर्मों का फल नहीं मिलता और न हीं किये गये कर्मों का फल कभी नष्ट होता है। इस कर्म और कर्मफल का सम्बंध वत्रमान, भूत और भविष्य तीनों कालों में प्राखध, संचित और क्रियमाण कर्म के रूप में अवश्यमेव प्राप्त होता है।

भारतीय दर्शन का एक और सामान्य धर्म है जिसका कर्मवाद के साथ गहरा सम्बंध है। इसके अनुसार संसार मानो एक रंगमंच है जिसमें मनुष्य को कर्म करने का अवसर मिलता है जिस तरह रंगमंच पर नाटक के पात्र सज-धजकर आते हैं और पात्रभेद के अनुसार नाट्य करते हैं इसी तरह मनुष्य इस संसार के रंगमंच पर शरीर इन्द्रिय आदि उपकरणों से सज्जित होकर आता है तथा योग्यतानुसार अपना कर्म करता है। मनुष्य से आशा की जाती है कि वह अपना कर्म नैतिक ढंग से करे जिससे उसका वत्रमान तथा भविष्य सुखमय हो शरीर, ज्ञानेन्द्रय और बाह्य परिस्थिति आदि विषय ईश्वर से अथवा प्रकृति से तो मिलते हैं किन्तु उनकी प्राप्ति पूर्वाजित कर्म के अनुसार ही होती है।

प्रायः समस्त भारतीय दर्शन इस बात पर ही एकमत है कि अज्ञान ही हमारे समस्त दुःखों (बंधन) का मूल कारण है। जीव, जगत और जागतिक वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप-अनित्य, अनात्म, दुःखमय के बारे में अज्ञानता के कारण ही जीव उन्हें नित्य, आत्मस्वरूप और सुखमय समझकर व्यवहार करने लगता है परिणाम स्वरूप कर्म और फलभोग के अकाट्य बंधन में बँधकर जन्म-पुनर्जन्म ग्रहण करता रहता है। इस अज्ञानजन्य बन्धन का नाश ज्ञान से ही हो सकता है। इसलिये कहा गया है कि 'गरते ज्ञानान्मुक्तिः' ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं।

चार्वाक के अतिरिक्त अन्य सभी भारतीय दर्शनों ने मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। किन्तु भिन्न-भिन्न दर्शनों में मोक्ष के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि मोक्ष की प्राप्ति से जीवन के दुःखों का नाश हो जाता है किन्तु कुछ दर्शनों के अनुसार मोक्ष से केवल दुःखों का नाश

ही नहीं होता वरन् आनन्द की भी प्राप्ति होती है। बौद्ध, जैन आदि मतों के अनुसार मोक्ष से आनन्द की प्राप्ति होती है।

NOTES

4.1.2 भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय-चार्वाक दर्शन

अवैदिक दर्शनों में प्रथम चार्वाक का नाम लिया जाता है। यह एक भौतिकवादी दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार जड़ तत्व या भौतिक तत्व की ही अन्तिम सत्ता है।

जहाँ तक चार्वाक दर्शन की ज्ञानमीमांसा का प्रश्न है, चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। प्रत्यक्ष के अलावा, अनुमान उपमान एवं शब्द प्रमाण की कोई सत्ता नहीं है। चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण है। इसके अनुसार केवल इन्द्रियों द्वारा ही विश्वासयोग्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों से परे प्रमाण की कोई सीमा नहीं है। अनुमान प्रमाण चूंकि व्याप्ति पर आधारित होता है और व्याप्ति की स्थापना प्रत्यक्ष से नहीं हो सकती है। अतः अनुमान सहित शब्द प्रमाण अमान्य है। प्रत्यक्ष से परे (इन्द्रियातीत) विषयों-ईश्वर, आत्मा, मोक्ष स्वर्ग आदि का कोई अस्तित्व नहीं है।

तवमीमांसा का ज्ञानमीमांसा के साथ बड़ा गहरा सम्बंध होता है। चूंकि चार्वाक प्रत्यय को ही प्रमाण मानते हैं अतः जिन विषयों का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता जैसे ईश्वर, आत्म, मोक्ष, परलोक आदि उसके अस्तित्व को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। संसार का निर्माण जड़ परमाणुओं के आकस्मिक संयोग से हुआ है। परमाणु चार प्रकार के हैं-वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी। चार्वाक आकाश के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। सृष्टि के लिये किसी चेतन सृष्टिकर्ता (ईश्वर) के अस्तित्व को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। परमाणुओं का ऐसा स्वभाव ही है। परमाणुओं की इसी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप जगत तथा जागतिक वस्तुओं की उत्पत्ति होती रहती है।

अब यहाँ पर यह प्रश्न पैदा होता है कि यदि जड़ की ही एकमात्र सत्ता है तो फिर हम चैतन्य की व्यवस्था कैसे करेंगे? विविध प्राणियों में दिखलाई पड़ने वाली चैतन्य की व्याख्या कैसे की जा सकेगी? चार्वाक उत्तर देते हुये कहते हैं-

जड़भूत विकारेषु चैतन्यं यत्तु दृश्यते।

ताम्बूल पूगचूर्णानां योगाद्राग इवोत्थितम्।।

NOTES

जड़ पदार्थों के विकास से चैतन्य उसी प्रकार उत्पन्न होता है जैसे पान, सुपाड़ी और चूने के योग से पान की लाली निकलती है। एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में रखने से उसमें नये-नये गुणों का आविर्भाव होता रहता है। मुड़ में मादकता का अभाव हि किन्तु गुण के सड़ जाने पर वह मादक हो जाता है। इसी प्रकार जड़ तत्वों का भी मिजूण यदि एक विशेष देश से हो तो शरीर की उत्पत्ति होती है और उसमें एक नये गुण चैतन्य का आविर्भाव होता है। शरीर से भिन्न आत्मा के का कोई प्रमाण नहीं। ''चैतन्य विशिष्टो देय एव आत्मा''। मृत्यु के बाद शरीर नष्ट हो जाता है और उसे ही जीवन का अंत समझना चाहिये। पूर्वजीवन, भविष्य जीवन, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, कर्मयोग-ये सभी विश्वास निराधार हैं। चार्वाक स्थायी, अजर अमर आत्मा के सिद्धांत को भी अस्वीकार करते हैं। शरीर से पृथक्-चेतन आत्मा नाम की कोई सत्ता नहीं है। वस्तुतः चेतन शरीर को ही आत्मा कहना चाहिये। ''चैतन्य विशिष्टों देह एव आत्मा''।

इसी तरह चार्वाक ईश्वर के अस्तित्व को भी नकार जाते हैं। चार्वाकों के अनुसार पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार भौतिक पदार्थ संसार की उत्पत्ति हेतु उपादान कारण के रूप में हैं परन्तु इसके लिये निमित्त कारण के रूप में किसी सृष्टा की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः जड़ तत्वों का स्वयं अपना-अपना स्वभाव है। अपने-अपने स्वभाव के अनुसार वे संयुक्त होते हैं। और उनके स्वतः सम्मिश्रण से संसार की उत्पत्ति होती है। संसार जड़तत्वों का आकस्मिक संयोग है।

जहाँ तक चार्वाक के नैतिक विचारों का प्रश्न है वत्रमानकाल तथा वत्रमान जीवन को ही मानने के कारण चार्वाक वत्रमान जीवन में अधिकाधिक इन्द्रिय सुख प्रप्ति को जीवन का परम पुरुषार्थ मानने के साथ स्वर्ग, मोक्षद्ध वैदिक क्रिया-कर्म आदि सभी का खण्डन करते हैं।

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।

मस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुटः।।

NOTES

आगे का विवेचन सर्वदर्शन समूह से -

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्
बुद्धिपौरुष हीनानां जीविका धात्रनिर्मिताः।
पभुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे शमिष्यति।
स्वापिता यजमानने तंत्र कस्मान्नहिंस्यते।

अग्निहोत्र, तीनों वेद, तीन दण्ड धारण करना और भस्म लगाना-ये बुद्धि और पुरुषार्थ से रहित लोगों की जीवका के साधन हैं जिन्हें ब्रह्म ने बनाया है। यदि ज्योतिष्येम यज्ञ में मारा गया पशु स्वर्ग जायेगा तो उस जगह पर यजमान अपने पिता को ही क्यों नहीं मार डालता।

स्वर्ग में स्थित (पितृगण) यदि यहाँ दान कर देने से तृप्त हो जाते हैं तो महल के ऊपर (कोठे पर) बैठे हुये लोगों को यहीं पर क्यों नहीं दे देते हैं।

(यदि आत्मा शरीर से पृथक् है और) शरीर से निकलकर दूसरे लोग में जाता है तब बन्धुओं के प्रेम से व्याकुल होकर लौट क्यों नहीं जाता?

वेद के रचयिता तीन है-भाँड़, धूत्र (ठग) और राक्षस। जर्मरी, तुर्फरी आदि पण्डितों की वाणी समझी जाती है। इसमें (अश्वमेघ में) घोड़े के लिंग को पत्नी द्वारा ग्रहण कराने का विधान है-यह सब ग्रहण करने का विधान भाँड़ों का कहा हुआ है।

4.1.3 जैन दर्शन-विषय वस्तु

महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित जैन दर्शन नास्तिक दर्शनों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जैन आचार-संहिता तो विश्वदर्शन साहित्य की अमूल्य निधि है। जैन मत के प्रवत्रक तीर्थकर कहलाते हैं। ऋषभदेव इस परम्परा के प्रथम तीर्थकर माने जाते हैं। तथा महावीर 24वें एवं अन्तिम तीर्थकर के रूप में समादृत हैं।

प्रमाण मीमांसा : जहाँ तक जैन दर्शन की प्रमाण मीमांसा का प्रश्न है-जैन दार्शनिक प्रत्यक्षद्व अनुमान और शब्द इन तीन प्रमाणों की ही सत्ता स्वीकार करते हैं। जैनियों के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पत्ति निम्न क्रम में होती है-सबसे पहले इन्द्रिय संवेदन होता है। जैसे-मान लीजिये हम कोई ध्वनि सुनते हैं। प्रारम्भ

में यह ज्ञात नहीं होता है कि यह ध्वनि किसकी है? इस अवस्था को अवगृह कहते हैं। अवग्रह में केवल विषय का ग्रहण होता है। तब मन में एक प्रश्न उठता है कि यह ध्वनि किस वस्तु की है? इस अवस्था को 'ईहा' कहते हैं। इसके बाद एक निश्चयात्मक ज्ञान होता है कि यह ध्वनि अमुक वस्तु की है। इसे अवाम कहते हैं। 'आवाय' का अर्थ निश्चय है। इस तरह जो ज्ञान प्राप्त होता है उसका मन में धारण होता है। इसको 'धारण' कहते हैं।

NOTES

तत्वमीमांसा : चार्वाक की तरह जैन दार्शनिक भी मानते हैं कि भौतिक द्रव्य चार प्रकार के तत्वों के मिश्रण से बनते हैं इस तत्वों के अतिरिक्त अनुमान के द्वारा आकाश, काल, धर्म तथा अधर्म का ज्ञान होता है। भौतिक द्रव्यों की स्थिति के लिये स्थान आवश्यक है। जीव, प्रदूगल, धर्म तथा अधर्म आकाश में ही स्थित हैं। द्रव्यों की व्यायिक विस्तार स्थान के कारण ही हो सकता है। यह स्थान ही आकाश है। द्रव्यों की अवस्थाओं का क्रमिक परिवत्रन काल के बिना नहीं हो सकता। काल न हो तो वत्रना, परिणाम, क्रिया, नवीनता, प्राचीनता आदि कुछ भी संभव नहीं है। धर्म तथा अर्धम क्रमशः गति तथा स्थिति के कारण हैं जहाँ पर भी हमें गति दिखलाई पड़ती है उसका कारण धर्म ही है। लेकिन यहाँ पर उल्लेखनीय है कि धर्म केवल गतिशील द्रव्यों की गति में ही सहायक हो सकता है स्थिर द्रव्यों को यह गति नही दे सकता। भौतिक द्रव्य (पुदूमल) आकाश, काल, धर्म तथा अधर्म के अतिरिक्त और भी एक प्रकार का द्रव्य है। प्रत्यक्ष तथा अनुमान के द्वारा प्रमाणित है कि प्रत्येक सजीव द्रव्य में एक चेतन वस्तु या जीव है वह है जीव या आत्मा। चैतन्य की उत्पत्ति जड़ पदार्थ से नहीं हो सकती। ऐसा कोई उदाहरण नहीं है कि जड़ पदार्थों के संयोग से चैतन्य का प्रादुर्भाव हुआ है।

जितने भी सजीव शरीर है उतने ही जीव है। जैनों के अनुसार केवल मनुष्य तथा वग्र-पक्षियों में ही जीवन नहीं है वरं पेड़-पौधों तथा धूलिकणों में भी जीवन पाया जाता है। सभी जीव सब प्रकार से चेतन नहीं है। वनस्पतियों तथा मिट्टी के टुकड़ों में जो जीव होता है। अतः उनको केवल स्पर्श बोध होता है। कुछ निम्न श्रेणी के जीवों में दो इन्द्रियाँ होती हैं। कुछ को तीन तथा चार इन्द्रिय भी होती है। मनुष्य तथा उच्च्व वर्ग के जन्तुओं को पाँच इन्द्रिय होती हैं। इन्हीं

NOTES

इन्द्रिय कितना भी समृद्ध क्यों न हो, शरीर बंधन में फंसे हुये जीव का ज्ञान सीमित ही होगा।

प्रत्येक जीव में अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य तथा अनंत सुख पाने की शक्ति है। ये जीव के स्वाभाविक गुण हैं। जीव की अपनी इच्छायें काम, क्रोध, लोभ, मान, माया, मोह तथा कर्म पुद्गल को अपनी ओर आकृष्ट करती है। इसका फल यह होता है कि जिस तरह किसी दीपक या सूर्य का प्रकार धूलिकणों से आच्छादित हो जाता है उसी तरह जीव का स्वरूप पुद्गल के सम्पर्क से छिप जाता है।

जीव का पुद्गल से सम्बंध विच्छेद ही मोक्ष है। परन्तु यह स्थिति कैसे प्राप्त होगी? उत्तर में जैन दार्शनिक कहते हैं-''सम्यक् दर्शन, ज्ञान चरित्राणि मोक्ष मार्याः। जैन तीर्थकरों के उपदेशों के प्रति श्रद्धा भाव होना ही सम्यक् दर्शन है। तीर्थकरों के उपदेशों का यथार्थ बोध ही सम्यक् ज्ञान है। दैनिक व्यावहारिक जीवन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन ही सम्यक् चरित्र है।

मोक्ष प्राप्त होने पर जीव की क्या स्थिति होती है जैन दार्शनिक कहते हैं कि मोक्ष प्राप्त कर लेने पर जीव अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान तथा अनंत शक्ति और अनंत आनन्द से युक्त हो जाता है। मुक्ति का वर्णन निम्न श्लोक के माध्यम से जैन दर्शन में किया गया है-

लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकागूढस्य चात्मनः।
क्षीणाष्टकर्मणों मुक्तिर्निव्यावृत्ति र्जिनोदिता।।

जिस चार अनंत पदार्थ - (ज्ञान, दर्शन, वीर्य तथा सुख) मिल चुके हैं। जो संसार में बँधा हुआ नहीं है (अगूढ़ तथा) तथा जिसके आठों कर्म नष्ट हो चुके हैं उस आत्मा को जिन भगवान की कहीं हुई निर्व्यावृत्ति-जहाँ से फिर लौटना नहीं, मुक्ति मिलती है।

4.1.4 बौद्ध दर्शन-विषय वस्तु

बौद्ध दर्शन के पूवर्वक महात्मा बुद्ध थे। वर्षों की अखण्ड साधना के परिणाम स्वरूप उन्हें बोधि या ज्ञान प्राप्त हुआ जिसका सार उनके चार आर्यसत्यों में पाया जाता है- 1. दुःख है, 2. दुःख का कारण है, 3. दुःख का निरोध है, 4. दुःख निरोध का मार्ग है।

सम्पूर्ण संसार दुःखमय तथा अनात्मस्वरूप है। यदि किसी व्यक्ति को किसी भी प्रकार का दुःख नहीं मिलता है वो भी जन्म और मृत्यु सहित वृद्धावस्था के दुःख को सबको भोगना पड़ता है। सुखों के साथ हमेशा यह चिंता लगी रहती है कि कहीं वे नष्ट न हो जाय। यह दुश्चिंता भी एक प्रकार का दुःख ही है। इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण संसार दुःखात्मक है।

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। जीवन में प्राप्त होने वाले दुःखों के कारण के रूप में बुद्धदेव ने 12 कारण बतलायें हैं जिन्हें भवचक्र, संसारचक्र या द्वादश निदान कहा जाता है। सभी कारणों के मूल में अविद्या या अज्ञानता ही प्रधान होती है। इसी अज्ञानता के कारण तृष्णा पैदा होती है। और यह तृष्णा ही है जो हमें विविध विचारों के भोग हेतु आकर्षित करती है। यदि हमें विषयों का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाय और यदि हम समझें कि वे कितने क्षणिक और दुःखद है तो उनके प्रति हमारी तृष्णा ही ंन जगे।

तीसरे आर्यसत्य की व्याख्या का जहाँ तक प्रश्न है तो दुःख के कारणों का यदि अंत हो जाय तो दुःख स्वतः समाप्त हो जायेगा।

चतुर्थ आर्यसत्य में दुःख दूर करने के उपायों का वर्णन है। इस अष्टांगिक मार्ग भी कहा जाता है। 1. सम्यक् दृष्टि, 2. सम्यक् संकल्प, 3. सम्यक् व्यायाम, 4. सम्यक् कर्मान्त, 5. सम्यक् आजीव, 6. सम्यक् व्यायाम, 7. सम्यक स्मृति, 8. सम्यक् समाधि। ये आठ साधन अविद्या तथा तृष्णा को दूर करते हैं। इस प्रकार दुःख का पूर्ण विनाश होता है और पुनर्जन्म की सम्भावना सदा-सर्वदा के लिये समाप्त हो जाती है। इसी अवस्था को निर्वाण कहा जाता है।

यद्यपि महात्मा बुद्ध तत्व मीमांसीय प्रश्नों का समाधान नहीं करते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि जब तक मनुष्य दुःखी है-तब तक दुःख से मुक्ति पाने के उपाय को छोड़कर किसी अन्य प्रश्नों या समस्या के समाधान हेतु समय नष्ट करना मूर्खता है। लेकिन शुष्क तर्क से दूर रहते हुये भी वे दार्शनिक विचार से अलग नहीं रहे। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि महात्मा बुद्ध ने निम्न दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था-

1. सभी विषयों का कारण है।

NOTES

2. सभी वस्तुयें परिवत्रनशील है। ज्यो-ज्यों उनके कारणों में परिवत्रन आता जाता है त्यों-त्यों उन वस्तुओं में भी परिवत्रन होता जाता है। कुछ भी नित्य नहीं है।
3. अतः इन परिवत्रनशील धर्मों के अतिरिक्त किसी द्रव्य के अस्तित्व का प्रमाण नहीं।
4. किन्तु वत्रमान जीवन का क्रम चलता रहता है। वत्रमान जीवन से कार्य अनुसार आगामी जीवन की उत्पत्ति होती है।

कालान्तर में महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के उपरान्त सम्पूर्ण बौद्ध दर्शन सत्ता और ज्ञान सम्बंधी प्रश्न को लेकर चार प्रमुख विभागों में विभक्त हो गया।

1. माध्यमिक या शून्यवाद : इस मत के पूवत्रक नागार्जुन थे। इस मत के अनुसार यह संसार शून्य है। वाह्य तथा अन्तर सभी विषय असत् हे। इसलिये इस मत को शून्यवाद कहा जाता है। प्रत्यक्ष जगत के परे पारमार्मिक सत्ता अवश्य है लेकिन वह अवर्णनीय है। उसके सम्बंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि वह मानसिक है या बाह्य। लौकिक विचारों द्वारा अवर्णनीय होने के कारण उसे शून्य कहते हैं।

2. योगाचार या विज्ञानवाद : इस मत के अनुसार सभी बाह्य पदार्थ असत्य हैं जो वस्तु वाह्य दीख पड़ती है वह चित्त की एक प्रतीति मात्र है। विज्ञान के प्रवाह को ही चित्त कहते हैं। हमारे शरीर तथा अन्यान्य पदार्थ जो मन के बहिर्गत मालुम पड़ते हैं वे सभी हमारे मन के अन्तर्गत है।

3. सौतान्तिक मत : इस मत के अनुसार चित्त और वाह्य जगत दोनों की सत्ता है। अर्थात् वाह्य और आभ्यंतर दोनों सत्य हैं। जितनी वस्तुयें वाह्य प्रतीत होती है वे यदि असत्य हो तो किसी भी वस्तु को देखने के लिये हमें वाह्य वस्तु की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती बल्कि मन ही उसके लिये पर्याप्त होता। किन्तु अपनी इच्छानुसार मन किसी वस्तु का अवलोकन नहीं कर सकता। हम जहाँ कहीं जिस समय में वाह्य को देखना चाहें तो संभव नहीं हो सकता। इससे यह सिद्ध होता है कि वाह्य को देखने के समय हमारे मन में जो वाह्य की एक प्रतीति है वह कल्पित नहीं है वर उसका अस्तित्व बहिः स्थित (किसी

विषय) पर निर्भर करता है। वाह्य वस्तु का ज्ञान वस्तु-जनित मानसिक आकारों से अनुमान के द्वारा प्राप्त होता है। अतः इस मत को वाह्यानुमेयवाद भी कहा जाता है।

NOTES

वैभाषिक या वाह्यप्रत्यक्षवाद :

इस मत के अनुसार वाह्य तथा मानसिक जगत दोनों सत्य हैं। जहाँ तक वाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करने की बात है, वाह्य जगत का ज्ञान हमें प्रत्यक्ष के द्वारा प्राप्त होता है। वाह्य वस्तुओं का ज्ञान हमें मानसिक चित्रों या प्रतिरूपों के द्वारा अनुमान से नहीं होता। यदि कभी किसी वाह्य वस्तु का हमें प्रत्यक्ष ज्ञान न हुआ हो तो यह कभी संभव नहीं है कि मानसिक प्रतिरूपों के द्वारा हमें उनका आनुमानिक ज्ञान हो सकें।

मूल बौद्ध दर्शन में प्रसिद्ध है कि बारह आयतनों (अन्तःस्थानों) की पूजा मोक्ष देने वाली है। ‘‘द्वादशायतनपूजा श्रेयस्करीति बौद्ध नये प्रसिद्धम्’’ बहुत सा धन उपार्जित करके हमें द्वादश आयतनों की पूजा करती चाहिये। यहाँ दूसरी पूजाओं से क्या लाभ है? विद्वानों ने कहा है कि पंच ज्ञानेन्द्रियाँ-(त्वचा, नेत्र, कान, जिह्वा और नासिका) पाँच कर्मेन्द्रियाँ-(हाथ, मुँह, पैर, जननेन्द्रिय तथा मुदा) मन और बुद्धि-ये ही द्वादश आयतन है इनसे सम्यक् कर्म करना चाहिये।

4.1.5 न्याय दर्शन-विषय वस्तु

न्याय दर्शन के प्रवत्रक महर्षि गौतम हैं। इन्हें अक्षपाद भी कहा जाता है। इसलिये इस दर्शन का नाम अक्षपाद दर्शन भी है। इस दर्शन में प्रमाणों पर विशेष जोर दिया गया है। इसी बात को दृष्टिगत करते रहे महर्षि वात्स्यायन न्याय दर्शन को परिभाषित करते हुये कहते हैं-‘‘प्रमाणरथैपरीक्षणं न्यायः।’’ प्रमाणों के द्वारा किसी विषय की परीक्षा करना ही न्याय है।

इस दर्शन में चार प्रमाणों को मान्यता दी गयी है-प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ‘‘इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष यथार्थ ज्ञानं प्रत्यक्षं’’। ज्ञानेन्द्रिय तथा वाह्य वस्तु इन दोनों के संयोग से जिस यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है उसे प्रत्यक्ष कहा

NOTES

जाता है। अनुमान उस ज्ञान को कहते हैं जो किसी पूर्व ज्ञान के पश्चात् आता है। अनुमान उस विचार प्रणाली को कहते हैं जिसमें हम किसी लिंग के द्वारा किसी अन्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते हैं क्योंकि उन दोनों में व्याप्ति का सम्बंध पाया जाता है। जहाँ तक अनुमान के अवयवों का प्रश्न है अनुमान में कम से कम तीन वाक्य और अधिक से अधिक तीन पद होते हैं। जैसे-पर्वत धूँआ है।

धूआ तथा आग में व्याप्ति है।
अतः पर्वत में आग है।

इस उदारण में पर्वत पक्ष है। पक्ष अनुमान का अंग है जिसके सम्बंध में अनुमान किया जाता है। यहाँ पर्वत के सम्बंध में ही यह अनुमान किया जाता है कि उसमें अग्नि है या नहीं साध्य उसे कहते हैं जो पक्ष के सम्बंध में सिद्ध किया जाता है। यहाँ अग्नि साध्य है क्योंकि अनुमान के द्वारा पर्वत के सम्बंध में यही सिद्ध करना रहता है कि उसमें आग है। यहाँ धूँआ हेतु है। हेतु उसे कहते हैं जिसके द्वारा पक्ष के सम्बंध में साध्य सिद्ध किया जाता है। उपमान में संज्ञा तभी संज्ञी के सम्बंध का ज्ञान होता है। सादृश्य ज्ञान के द्वारा जो संज्ञा-संज्ञी अथवा नाम और नामी का सम्बंध स्थापित होता है उसे उपमान कहते हैं। जैसे यदि गवय का केवल नाम रहे तथा यह विदित रहे कि गवय का आकार प्रकार गाय के सादृश होता है तो गवय को प्रथम बार भी देखकर समझा जा सकता है कि यह गवय है। ऐसा ज्ञान उपमान के द्वारा होता है।

यथार्थ वक्ता (आप्त) के द्वारा उच्चरित वाक्य ही शब्द है जैसे वेद के वाक्य या भूगोल में कहे गये वाक्य। न्यायसूत्र में शब्द के दो भेद किये गये हैं-दृष्टार्थ शब्द और अदृष्टार्थ शब्द। जब आप्त वाक्य की संगति इस संसार के तथ्यों से बैठाई जा सके, जैसे यह कहना कि साइबेरिया में बर्फ जमी हुई रहती है तब उसे दृष्टार्थ कहते हैं। किन्तु आप्त वाक्यों से परलोक की बातों का ज्ञान होने पर उसे अदृष्टार्थ शब्द कहते हैं। इस प्रकार लौकिक वाक्यों और ऋषि के वाक्यों में भेद किया जा सकता है। इसे ही लौकिक और वैदिक भी कहते हैं।

अन्याय भारतीय दर्शनों की तरह न्याय दर्शन का भी उद्देश्य दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति के आय का अनुसंधान करना है। ऐसा तभी हो सकता है

जब आत्मा, शरीर, इन्द्रिय तथा सांसारिक विषयों के बंधन से मुक्त हो जाय। आत्मा शरीर और मन से भिन्न है। शरीर का निर्माण भौतिक तत्वों के सम्मिश्रण से होता है। जब आत्मा को इन्द्रियों द्वारा किसी वस्तु से सम्बंध होता है तो उसमें चैतन्य, आत्मा का कोई नित्य गुण नहीं है। यह आगंतुक गुण है। जब मन और इन्द्रियों के द्वारा आत्मा किसी विषय से सम्बद्ध होता है तभी उस विषय का चैतन्य या ज्ञान आत्मा को होता है। मुक्त हो जाने पर आत्मा इन सम्यकों से रहित हो जाता है। ज्ञान भी लुप्त हो जाता है। आत्मा ही सांसारिक विषयों में आसक्त या अनासक्त होता है। कर्मों के अच्छे-बुरे फलों का उपभोग भी इसी को करना पड़ता है। अविद्या के वशीभूत होकर आत्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह से प्रेरित हो अच्छा या बुरा कर्म करता है और तदनुरूप फल भोग हेतु जन्म-मरत के चक्र में पड़ता है। तत्वज्ञान से ही आत्मा को जन्म-मरण अर्थात् आवागमन के चक्र से मुक्ति दिलायी जा सकती है। इस अवस्था को अपवर्ग कहा जाता है। मोक्षावस्था का वर्णन करते हुये नैयायिक कहते हैं कि मोक्ष की अवस्था में आत्मा शरीर से पूर्णतया मुक्त होकर सुख-दुःख से परे हो जाता है और बिल्कुल अचेतन हो जाता है। इस अवस्था में दुःख का सदा के लिये अंत हो जाता है। यह आत्मा की वह चरम अवस्था है जिसका वर्णन धर्मग्रन्थों में 'अमयम', 'अजरम्' 'अमृत्युपदम्' आदि नामों से किया गया है।

जहाँ तक नैयायिकों की ईश्वर मीमांसा का प्रश्न है, नैयायिकों के अनुसार ईश्वर जगत का आदिस्रष्टा, पालक तथा संहारक है। वह शून्य से संसार की सृष्टि नहीं करता वरन् नित्य परमाणुओं दिक्, काल, आकाश तथा मन तथा आत्माओं से उसकी सृष्टि करता है। ईश्वर संसार का आदि निर्माता है उपादान कारण नहीं। इसे हम विश्वकर्मा कह सकते हैं। न्याय दर्शन में ईश्वर के छः गुण बताये गये हैं जिन्हें 'षडेश्वर्य' कहा जाता है। ये गुण है-अधिपत्य, वीर्य, यश, श्री ज्ञान एवं वैराग्य। ईश्वर को हम संसार का प्रायोजक कारण भी कह सकते हैं। जिस प्रकार कोई बुद्धिमान एवं दयालु पिता अपने पुत्र को उसकी मेधा, योग्यता एवं उपार्जित गुण के अनुसार कार्य करने को प्रेरित करता है, उसी प्रकार ईश्वर भी सभी जीवों को अपने-अपने अदृष्ट (अतीत संस्कार) के अनुसार

NOTES

NOTES

कर्म करने को तथा उनके अनुसार फल पाने को प्रेरित करता है। मनुष्य अपने कर्मों का कर्ता तो है-लेकिन वह ईश्वर के द्वारा अपने अदृष्ट (या अतीत कर्म) के अनुसार प्रेरित या प्रायोजित होकर कर्म करता है। अतः ईश्वर को जीव के कर्मों का प्रायोजककर्ता कहते हैं। इस प्रकार ईश्वर संसार के मनुष्यों एवं मनुष्येत्तर जीवों का धर्म व्यवस्थापक है, उनका कर्म कहते हैं। इस प्रकार ईश्वर संसार के मनुष्यों एवं मनुष्येतर जीवों का धर्म व्यवस्थापक है, उनका कर्मफल दाता और सुखों-दुःखों का निर्णायक है।

नैयायिक ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिये अनेक युक्तियों का सबरा लेते हैं-जैसे-इस संसार का जो कर्ता है वही ईश्वर है, अदृष्ट का अधिष्ठाता ईश्वर है, धर्मग्रन्थों की प्रामाणिकता का कारण ईश्वर है आदि तथापि उनकी मान्यता है कि ईश्वर सिद्धि के परंपरागत प्रमाण यथार्थतः प्रमाण नहीं है। तर्क से नहीं प्रत्युत साक्षात् अनुभूति से ईश्वर का ज्ञान हो सकता है।

4.1.6 वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन के प्रवत्रक महर्षि कणाद थे। कहा जाता है कि वे इतने बड़े संतोषी थे कि खेतों से चुने हुये अन्नकणों के सहारे ही जीवन यापन करते थे इसलिये उनका उपनाम पड़ा 'कणाद'। उनका वास्तविक नाम 'उलूक' था इसलिये उनके द्वारा प्रवत्रित यह दर्शन औलूक्य दर्शन भी कहलाता है। चूंकि इस दर्शन में 'विशेष' नामक पदार्थ की विशद रूप से विवेचना की गयी है। अतः यह दर्शन वैशेषिक भी कहलाता है।

वैशेषिक दर्शन में 7 पदार्थों के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय में छ भाव पदार्थ है और सातवाँ 'अभाव' पदार्थ है। द्रव्य वह पदार्थ है जो स्वतः गुण या कर्म से भिन्न होते हुये भी उसका आश्रय स्परूप है। गुण और कर्म जब भी रहेंगे किसी न किसी द्रव्य में ही रहेंगे। द्रव्य नौ प्रकार के होते हैं-1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. आकाश, 6. दिक्, 7. काल, 8. आत्मा, 9. मन।

इनमें प्रथम पाँच भौतिक हैं। उनके गुण क्रमशः गन्ध, रस, रूप स्पर्श तथा शब्द है। पृथ्वी, जल, अग्नि, तथा वास क्रमशः चार प्रकार के परमाणुओं से बने हुये हैं। ये परमाणु भौतिक होते हुये भी अनश्वर हैं परमाणुओं की सृष्टि नहीं होती है। वे शाश्वत हैं। किसी भौतिक पदार्थ के सबसे छोटे टुकड़े को जिसका और अधिक विभाजन संभव नहीं है परमाणु कहते हैं।

NOTES

आकाश, दिक् तथा काल अप्रत्यक्ष द्रव्य है-वे एक नित्य तथा विभु है। मन नित्य है परन्तु विभु नहीं। यह परमाणु की तरह निखयव है। जीवात्मा और उसके गुण (सुख-दुःखादि) को प्रत्यक्ष करने वाला आम्यंतरिक साधन या अंतरिन्द्रिय मन है। यह परमाणु रूप है। अतः दृष्टिगोचर नहीं होता है।

गुण वह पदार्थ हो द्रव्य में ही रहता है जिसमें और गुण या कर्म नहीं रह सकता। सब मिलकार चौबीस प्रकार के गुण होते हैं। 1. रूप, 2. रस, 3. गन्ध, 4. स्पर्श, 5. शब्द, 6. संध्या, 7. परिमाण, 8. पृथक्त्व, 9. संयोग, 10. विभाग, 11. परात्व, 12. अपरत्व, 13. बुद्धि, 14. सुख, 15. दुःख, 16. इच्छा, 17. द्वेष, 18. प्रयत्न, 19. गुरुत्व, 20. द्रव्यत्व, 21. स्नेह, 22. संस्कार, 23. धर्म और अधर्म।

द्रव्य के मूल गतिशील धर्मों का पारिभाषित नाम कर्म है। गुण द्रव्य का निष्क्रिय स्वरूप है और कर्म सक्रिय है। कर्म पाँच प्रकार के होते हैं-1. उत्क्षेपण (ऊपर फेकना) 2. अवक्षेपण (नीचे फेकना), 3. आकुञ्चन (सिकोड़ना), 4. प्रसारण (फैलाना) और 5. गमन (चलना)।

वह पदार्थ जिसके कारण भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक जाति के अन्तर्गत समविष्ट होकर एक ही नाम से पुकारे जाते हैं। सामान्य कहलाता है। सामान्य को परिभाषित करते हुए न्याय वैशेषिक दर्शन में उसके निम्न लक्षण बतलाये गये हैं-

नित्यमेकमनेकानुगतम सामान्यम्।

द्रव्य गुण कर्म वृत्तिः सामान्यः।।

सामान्य द्रव्य, गुण और कर्म में रहता है। भिन्न-भिन्न गौओं में जो एकता की प्राप्ति होती हौ वह इसी सामान्य के कारण। विस्तार या व्यापकता की दृष्टि से सामान्य के तीन भेद होते हैं-

NOTES

सबसे अधिक व्यापक, सामान्य को 'पर' सबसे कम व्यापक को 'ऊपर' तथा बीच वाले सामान्यों को 'परापर' कहते हैं। द्रव्यों के अपने-अपने व्यक्तिगत स्वरूप जिनके कारण वे एक दूसरे से पहचाने जाते हैं विशेष कहलाते हैं। जो द्रव्य निखयव होने केक कारण नित्य हैं उनके विशिष्ट व्यक्तित्व को ही विशेष कहते हैं। ऐसे द्रव्यों दिक्, काल, आकाश, मन, आत्मा तथा चार भूतों के परमाणु। विशेष नित्य, असंख्य और अगोचर हैं।

न्याय वैशेषिक दर्शन में सम्बंध दो प्रकार के माने जाते हैं-संयोग और समवाय। पृथक-पृथक वस्तुओं का कुछ काल के लिये मिल जाना संयोग सम्बंध कहलाता है। यह क्षणिकद्ब अनित्य और वाह्य होता है। समवाय नित्य सम्बंध है। यह दो पदार्थों का वह सम्बंध है जिसके कारण एक दूसरे में समवेत रहता है। समवाय सम्बंध को 'अयुतसिद्ध' सम्बंध भी कहते हैं। यह सम्बंध उन्हीं दो पदार्थों में होता है जिनमें कम से कम एक दूसरे के बिना नहीं रह सकता।

प्रायः लोग अभाव के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते हैं। परंतु वैशेषिक दर्शन अभाव के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। रात में जब हम आकाश की ओर देखते हैं तो उसमें सूर्य का नहीं होना वैसे ही निश्चित रूप से मालुम होता है जैसे-चन्द्रमा या तारों का होना। अभाव दो प्रकार का होता है-1. संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु में अभाव संसर्गाभाव है जैसे अग्नि में शीतलता का अभाव। अन्योन्याभाव का अर्थ है एक वस्तु का दूसरी वस्तु नहीं होना। जैसे अग्नि जल नहीं संसर्गाभाव तीन प्रकार का होता है-1. प्रागभाव, 2. ध्वसाभाव, 3. अत्यन्ताभाव।

अन्योन्याभाव का अर्थ है दो वस्तुओं का एक नहीं होना। जब एक वस्तु दूसरी वस्तु से भिन्न होती है तब उसका अर्थ यह होता है कि पहली वस्तु का दूसरी वस्तु के रूप में अभाव है और दूसरी वस्तु का पहली के रूप में।

अत्यन्ताभाव की तरह अन्योन्याभाव भी अनादि और अनंत होता है। ईश्वर तथा मोक्ष के विषय में वैशेषिक तथा न्याय मतों में पूर्णतः साम्य है। अतः उसका विवेचन तथ्यों का पिष्टपेषण होगा।

4.1.7 साँख दर्शन एवं योग दर्शन

NOTES

साँख दर्शन के प्रवत्रक महर्षि कपिल हैं। आस्तिक दर्शनों में यह प्राचीनतम दर्शन माना जाता है। साँख पुरुष और प्रकृति इन दो मूल तत्वों में विश्वास करता है। अपने-अपने अस्तित्व के लिये पुरुष और प्रकृति परस्पर निरपेक्ष है। पुरुष (आत्मा) शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि से भिन्न है। यह सांसारिक विषय नहीं है। आत्मा वह शुद्ध चैतन्य स्वरूप है जो सर्वदा ज्ञाता के रूप में रहता है, कभी ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। यह चैतन्य स्वरूप है। चैतन्य इसका गुण नहीं वरन् स्वभाव है। जितने कर्म या परिणाम है जितने सुख या दुःख है वे सभी प्रकृति और उसके विकारों के धर्म हैं। साँख बहु आत्मवादी दर्शन है। यदि बहुलता नहीं होती तो एक पुरुष के सुखी, दुःखी, मूढ़, बद्ध या मुक्त हो जाने से सभी पुरुष वैसे ही हो जाते। एक पुरुष के मरने पर सभी मरते, जन्म लेने पर सबों का जन्म होता। स्त्री-पुरुष जहाँ एक तरफ पशु-पक्षियों से ऊपर की श्रेणी में है वहीं दूसरी तरफ देवताओं से नीचे की श्रेणी में है। यदि पशु-पक्षी, मनुष्य देवता सभी में एक ही आत्मा का निवास होता तो ये विभिन्नतायें नहीं होती। इन बातों से सिद्ध होता है कि आत्मा एक नहीं अनेक है।

प्रकृति इस संसार का आदि कारण है वह एक नित्य और जड़ वस्तु है। ''मुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः'' सत्व, रज और तम ये तीन गुण प्रकृति में रहते हैं। इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। सत्व, रज और तम ये मूलद्रव्य प्रकृति के उपादान तत्व है। ये 'गुण' इसलिये कहलाते हैं कि ये रस्सी के तीनों गुणों (रेशों) की तरह आपस में मिलकर पुरुष के लिये बंधन का कार्य करते हैं। गुणों के स्वरूप के सम्बंध में सॉख्य कारिका में निम्नानुसार विवरण प्राप्त होता है-

सत्वं लघु प्रकाशमकमिष्टउवष्टंमकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।।

सत्वगुण हल्का और इसीलिये प्रकाशमय माना जाता है। रजोगुण चंचल तथा इसीलिये उत्तेजक (उवष्टंमक) है। तमोगुण भारी अतएव अवरोधक (नियामक)

NOTES

है-एक ही प्रायोजन की सिद्धि के लिये ये तीनों मिलकर काम करते हैं। जैसे दीपक में अग्नि, बत्ती और तेल का विरोधी है-फिर भी तीनों मिलकर वस्तुओं के प्रकाशन का कार्य करते हैं।

पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से (अर्थात् वासना के बन्धन से) सृष्टि का प्रारम्भ होता है प्रकृति के तीनों गुणों की साम्यावस्था पुरुष के संयोग से नष्ट हो जाती है। जगत की सृष्टि इस क्रम से होती है-सबसे पहले महत् या बुद्धि का प्रादुर्भाव होता है। बुद्धि के विशेष कार्य हैं निश्चय और अवधारण। बुद्धि के द्वारा ही हम किसी विषय के सम्बंध में निर्णय करते हैं। बुद्धि की सहायता से पुरुष अपना और प्रकृति का भेद समझकर अपने यर्थाथ स्वरूप की विवेचना कर सकता है। प्रकृति का दूसरा विकास अहंकार है। यह महत्तत्व का परिणाम है। बुद्धि का मैं और मेरा यह अभिमान का भाव ही अहंकार है। इसी अहंकार के कारण पुरुष मिथ्या भ्रम में पड़कर अपने को कर्ता (काम करने वाला) कामी (इच्छा करने वाला) और स्वामी (वस्तुओं का अधिकारी) समझने लगता है। अहंकार में जब महत्तत्व का बाहुल्य होता है तो उससे पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय तथा मन की सृष्टि होती है। तामस अहंकार से पंच तन्मात्रों की उत्पत्ति होती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विषयों के पाँच तन्मात्र होते हैं। पंच तन्मात्रों से पंच महाभूतों का आविभीव होता है।

पुरुष नित्य तथा निरपेक्ष है किन्तु अविद्या के कारण वह अपने को शरीर, इन्द्रिय तथा मन से पृथक् नहीं समझता। पुरुष तथा प्रकृति में अविवेक के कारण हमें दुःखों से पीड़ित होना पड़ता है। बुद्धि में सुख या दुःख का आविर्भाव होने पर आत्मा को ऐसा भान होता है कि इसे ही सुख या दुःख हो रहा है (क्योंकि वह बुद्धि से अपने को अभिन्न समझता है ठीक उसी तरह से जैसे प्रिय संतान के सुखी या दुःखी होने पर पिता अपने को ही सुखी या दुःखी समझता है। यही अज्ञानता या अविवेक सारे अनर्थों की जड़ है। ज्यों ही हमें विवेक होता है अर्थात् ज्यों ही पुरुष का शरीर, इन्द्रिय, मन, अहंकार और बुद्धि से पार्थक्य हो जाता है त्यों ही पुरुष के समस्त सुखों-दुःखों का अंत हो जाता है। तब पुरुष का संसार के साथ कोई अनुराग नहीं रहता और वह संसार के घटनाक्रम का

साक्षी या द्रष्टामात्र रह जाता है। इसी अवस्था को मुक्ति या कैवल्य कहते हैं। यह अवस्था आत्मज्ञान की स्थिति है। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये बहुत बड़ी साधना की आवश्यकता होती है। उसके लिये इस सत्य का निरंतर मनन और निदिध्यासन चाहिये कि आत्मा, शरीर, इन्द्रिय मन और बुद्धि नहीं। इसके लिये योगदर्शन में वर्णित योगांगों की साधना करनी पड़ती है।

सॉख्य दर्शन में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है। संसार की सृष्टि के लिये किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि पूरे संसार के निर्माण के लिये प्रकृति ही पर्याप्त है। शाश्वत तथा अपरिवत्रनशील ईश्वर परिवत्रनशील और नश्वर जगह का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि कारण तथा परिणाम वस्तुतः अभिन्न होते हैं। कारण ही परिणाम में परिणत हो जाता है। ईश्वर संसार में परिणत नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर परिवत्रनशील नहीं माना जाता है।

योग दर्शन :

योग दर्शन के प्रवत्रक महर्षि पतंजलि हैं। सॉख्य दर्शन के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति विवेक ज्ञान (पुरुष और प्रकृति के पार्थक्य ज्ञान) से ही हो सकती है। परन्तु जब तक मन पर पूर्ण नियंत्रण नहीं हो जाता है चित्त में निरन्तर उठने वाली चंचल वृत्तियों का शासन नहीं हो जाता है। इसीलिये योग दर्शन चित्तवृत्तियों के निरोध पर बहुत जोर देता है। यहाँ तक कि महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को ही योग कहा है। योगस्तुचित्तवृत्ति निरोधः।

वृत्तियाँ पाँच हैं- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति। अज्ञात वस्तु का निश्चय कराने वाली वृत्ति प्रमाण है। विषयों के सम्बंध में मिथ्याज्ञान को विपर्यय (भ्रम) कहते हैं। वास्तविकता से दूर तथा काल्पनिक प्रतीति को विकल्प कहते हैं जैसे यह ब्राह्मण सूर्य है, खरहे की सींग आदि। निद्रा वह चित्तवृत्ति है जिसमें तमोगुण का प्राधान्य होता है और उसके कारण जाग्रत और स्वप्न अवस्थाओं के अनुभव विलीन हो जाते हैं। अतीत अनुभवों की यथावत् मानसिक प्रतीति 'स्मृति' है।

NOTES

चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही संभव है। चित्त स्थिरता के लिये यम-नियमादि योगांगो का अनुष्ठान करना ही अभ्यास कहलाता है। तृष्णा रहित होना ही वैराग्य है। योग के अंग माने गये हैं जिन्हें अष्यंग योग कहते हैं। इन अंगों के अनुष्ठान से अविद्या का नाश हो जाता है तथा **यर्थार्थ** ज्ञान की प्राप्ति होती है। योग के आठ अंग निम्नलिखित हैं-

यम : अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिगृहाःयमाः। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, ही यम है। इस आदर्श का पालन मनसा, वाचा, कर्मणा किया जाना चाहिये।

नियम : ''शौच संतोष तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानादि नियमाः''। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिवान-(परम् पिता परमेश्वर को सब कुछ अर्पण करना ही ईश्वर प्राणिधान है) इन आचारों का अभ्यास 'नियम' कहलाता है।

आसन : ''स्थिर सुखमासनम्'' आनन्दप्रद शारीरिक स्थिति को आसन कहते हैं।

प्राणायाम : नियन्त्रित रूप से श्वास ग्रहण, धारण तथा त्याग को प्राणायाम कहते हैं।

प्रत्याहार : इन्द्रियों को विषयों से हटाने का नाम इन्द्रिय संयम अथवा प्रत्याहार है।

धारण : वाह्य तथा आन्तरिक किसी भी विषय से चित्त को बाँध देना या लगा देना ही धारणा है।

ध्यान : किसी विषय का सुदृढ़ तथा अविराम चिंतन ध्यान कहलाता है।

समाधि : चित्त की वह अवस्था जिसमें ध्यानशील चित्त ध्येय विषय में तल्लीन हो जाता है।

कहा जाता है कि योगाभ्यास करते समय साधन को विशेष अवस्थाओं में विशेष सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये सिद्धियाँ आठ प्रकार की होती हैं-

आणिमा : योगी चाहे तो अणु के समान छोटा या अदृश्य बन सकता है।

लधिमा : योगी चाहे तो रूई के समान हल्का होकर उड़ सकता है।

महिमा : योगी चाहे तो पहाड़ के समान बड़ा बन सकता है।

प्राप्ति : योगी चाहे तो कहीं से कोई भी वस्तु मँगा सकता है।

प्राकाम्य : योगी की इच्छाशक्ति बाधा रहित हो जाती है।

वशित्व : योगी सब जीवों को वशीभूत कर सकता है।

ईशित्व : वह सब भौतिक पदार्थों पर अधिकार जमा सकता है।

यत्रकामावसायित्व : योगी का जो संकल्प होता है उसकी सिद्धी हो जाती है।

NOTES

यहाँ पर योगदर्शन का कड़ा आदेश है कि साधन को अलौकिक ऐश्वर्यों के चक्कर में नहीं पड़ता चाहिये। नहीं तो वह पथभ्रष्ट हो जाता है। उसे तो एकमात्र आत्मदर्शन के लिये ही प्रयासरत् रहना चाहिये।

योगदर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। इसीलिये प्रायः योग दर्शन को सेश्वर साँख्य भी कहा जाता है। योग के अनुसार चित्त की एकाग्रता के लिये तथा आत्मज्ञान के लिये ईश्वर ही ध्यान का सार्वोत्तम विषय है। ईश्वर पूर्ण, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा सर्वदोष रहित है। योग दर्शन की मान्यता है कि पुरुष और प्रकृति के संयोग से संसार की सृष्टि का आरम्भ होता है। संयोग का अंत होने पर प्रलय होता है। पारस्परिक संयोग या वियोग पुरुष और प्रकृति के लिये स्वाभाविक नहीं है। अतः एक पुरुष-विशेष का अस्तित्व परमावश्य है जो पुरुष के पास तथा पुण्य के अनुसार पुरुष तथा प्रकृति में संयोग स्थापित करता है।

4.1.8 मीमांसा दर्शन

आस्तिक दर्शनों में मीमांसा अग्रगण्य है। मीमांसा दर्शन के पूवर्वक महर्षि जैमिनी थे। मीमांसा दर्शन में वैदिक कर्मकाण्ड की पुष्टि की गयी तथा वैदिक मंत्रों की यागपरक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। संक्षेप में मीमांसा दर्शन के दो मुख्य विषय है-कर्मकाण्ड की विधियों में असंगति दूर करने तथा संगति उत्पन्न करने के लिये व्याख्या पद्धति का निर्माण करना और कर्मकाण्ड के मूल सिद्धांतों का तर्कनिष्ठ प्रतिपादन करना।

मीमांसा के अनुसार वेद अपौरुषेय तथा नित्य हैं। वेद का प्रकाश ऋषियों द्वारा हुआ है। वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये मीमांसा दर्शन में प्रमाणों का सविस्तार विचार हुआ है।

वेद का विधान ही धर्म है वेद जिसका निषेध करता है वह अधर्म है। विहित कर्मों का पालन तथा निषिद्ध कर्मी का त्याग धर्म कहलाता है। वेद विहित कर्मों को

NOTES

किसी फल या पुरस्कार की प्रत्याशा में नहीं करना चाहिये वरं उन्हें आदेश मानकर उनका पालन करना चाहिये। नित्यकर्मों के निष्काम आचरण से पूर्वार्वित कर्मी का नाश हो जाता है और वेदांत होने पर अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

मीमांसा दर्शन के अनुसार चैतन्य आत्मा का स्वरूप लक्षण नहीं है। जब आत्मा का शरीर के साथ संयोग होता है तभी चैतन्य की उत्पत्ति होती है। जब आत्मा का शरीर से सम्बंध समाप्त हो जाता है तब उस समय वह चेतनाविहीन हो जाता है फिर भी उसमें चैतन्य की शक्ति विद्यमान रहती है।

प्रामाण्यवाद का निरुपण मीमांसा की अन्यतम विशेषता है। यथार्थ अनुभव के रूप में जो प्रमा या प्रमाण होता है उसी में रहने वाले धर्म को प्रामाण्य कहते हैं। इसी तरह अययार्थ अनुभव में रहने वाले धर्म को अप्रामाण्य कहते हैं। अब प्रश्न है कि किसी वस्तु के प्रामाण्य या अप्रामाण्य का क्या कारण है कारण खोजने के विषय में विभिन्न दार्शनिक विवाद करते हैं-उनके वाद को ही प्रामाण्यवाद कहते हैं।

'सर्वदर्शन संग्रह' में प्रामाण्यवाद का निरूपण निम्नानुसार किया गया है-

प्रमाणत्वाप्रमाणत्वे स्वतः सॉंखाः समाश्रिताः
नैपाविकास्ते परतः सौगन्ताश्च चरमं स्थत्।।
प्रथमं परतः ब्राहुः प्रमाण्यं वेदवादिनः
प्रमाणत्वं स्वतः प्रातु परतश्चाप्रमाणतम्।

प्रामाण्य और अप्रामाण्य दोनों को सॉंख लोग स्वतः मानते हैं। नैवाविक लोग दोनों को परतः मानते हैं। बौद्ध लोग अप्रामाण्य को स्वतः तथा प्रामाण्य को परतः मानते हैं। जबकि मीमांसक लोग प्रामाण्य को स्वतः तथा अप्रामाण्य को परतः मानते हैं। जहाँ तक प्रमाण तथा उनकी संख्या का प्रश्न है प्रमाकर मीमांसा के अनुसार प्रमाणों की संख्या 5 है-प्रत्यक्ष, अवमान, उपमान शब्द अर्थापत्ति। इनसे सम्बन्धित मीमांसा की व्याख्या न्याय दर्शन से मिलती जुलती है। जब कोई ऐसी घटना देखने में आती है जो बिना एक दूसरे विषय की कल्पना किये समझ में नहीं आ सकती तो उस अदृष्ट की कल्पना को अर्थापत्ति कहते हैं। जैसे-देवदत्त दिन में कभी भोजन नहीं करता, फिर भी दिन-दिन मोटा होता जाता

है। अब यहाँ इन दोनों बातों में उपवास तथा शरीर पुष्ट में परस्पर विरोध देखने में आता है। अब इन दोनों विरुद्ध बातों की उपपत्ति तभी संभव हो सकती है जब यह कल्पना कर ली जाय कि देवदत्त रात में खूब भोजन करता है। ऐसी कल्पना को अर्थापत्ति कहते हैं।

NOTES

कुमरिल भट्ट तथा अद्वैत वेदान्त का मत है कि किसी विषय के अभाव का जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है वह अनुपलब्धि प्रमाण के द्वारा। कोठरी में घड़ा नहीं है। इस ज्ञान को प्रत्यक्ष तो नहीं कह सकते क्योंकि अभाव कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसका इन्द्रिय के साथ सम्पर्क हो सके। घर का आँख के साथ सम्पर्क हो सकता है घटाभाव का नहीं। अतएव भाट्ट मीमांसकों का कहना है कि यहाँ घटाभाव का ज्ञान घट की अनुपलब्धि (अदर्शन) के कारण होता है।

मीमांसा भौतिक जगत को मानती हैं। मीमांसा वाह्य सत्तावादी है। परन्तु मीमांसक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। यद्यपि आत्मा के अस्तित्व को मीमांसक स्वीकार करते हैं। जगत अनादि तथा अनंत है न इसकी कमी सृष्टि हुई है और न प्रलय होता है। सांसारिक वस्तुओं का निर्माण आत्माओं के पूर्वार्जित कर्मों के अनुसार भौतिक तत्वों से होता है बहुत सारे दर्शनों में ईश्वर को कर्मफल प्रदाता के रूप में स्वीकार किया गया है। परन्तु मीमांसक तो ईश्वर को मानते ही नहीं ऐसी स्थिति में प्रश्न पैदा होता है कि कर्मफल का प्रदाता होगा कौन? साथ ही कर्मफल का संरक्षक कौन होगा? मीमांसकों के अनुसार जब कोई व्यक्ति यज्ञादि कर्म करता है तो एक शक्ति की उत्पत्ति होती है जिसे 'अपूर्ण' कहते हैं। इसी अपूर्व के कारण किसी भी कर्म का फल भविष्य में उपयुक्त अवसर पर मिलता है। अतः इस लोक में किये गये कार्यो के फल का उपयोग परलोक में किया जा सकता है।

4.1.9 वेदांत दर्शन- शांकर अद्वैत

आचार्य शंकर द्वारा प्रतिपादित वेदान्त अद्वैत वेदान्त कहलाता है। अपने सम्पूर्ण दर्शन का सार एक अर्द्ध श्लोक में व्यक्त करते हुये आचार्य कहते हैं "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवैः ब्रह्मएव नापरः" अर्थात् ब्रह्म ही एकमात्र सत्य

है। दृश्यमान जगत तथा जागतिक वस्तुयें मिथ्या हैं। आत्म और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। आत्मा ही ब्राह्म है। यह अद्वैत और कूटस्थ नित्य है।

NOTES

आचार्य अपने दार्शनक सिद्धांतों की व्याख्या एवं स्थापना के पूर्व प्रचलित दार्शनिक मतों रूपी झाड़ियों की अपने तर्क रूपी निर्मम कुल्हाड़ी द्वारा काटकर छिन्न-भिन्न कर देते हैं। और अपने अद्वैत मत को उपनिषदों की उपयुक्ततम व्याख्या तथा वेदान्त तथा वेदान्तसूत्र के सर्वाधिक निकट सिद्ध करते हैं। अपने जगत एवं सृष्टि विषयक् सिद्धांत की स्थापना पूर्व आचार्य साँख के सृष्टि विचार एवं वैशेषिक परमाणुवाद का निर्मम खण्डन करते हैं। सृष्टि को उद्‌देश्यमूलक स्वीकार कर और साथ ही सृष्टिकर्ता का अस्तित्व अस्वीकार कर साँख ने अपने को एक विचित्र स्थिति में डाल दिया है। चैतन्य रहित उद्‌देश्य अवोधगम्य है बिना किसी चेतन परिचालक के उपाय और उपेय, साधन और उद्‌देश्य का संयोजन संभव नहीं। सॉख्य जिन पुरुषों को मानता है वे निष्क्रिय होते हैं अतएव उनसे भी जगत की सृष्टि में सहायता नहीं मिल सकती।

वैशेषिक का परमाणुवाद भी स्वीकार्य नहीं। क्योंकि अचेतन परमाणु इस विलक्षण रूप में सुव्यवस्थित विश्व को उत्पन्न नहीं कर सकते। परमाणुओं की प्रेरणा के लिये वैज्ञानिक अदृष्ट का सहारा लेते हैं। परन्तु इससे भी समस्या हल नहीं होती। क्योंकि वह भी तो अचेतन है। फिर इस बात का भी समुचित समाधान नहीं मिलता कि सृष्टि रचना के लिये पहले-पहल परमाणुओं ने क्रिया कैसे उत्पन्न हुई?

इसी तरह बौद्धों का क्षणिकवाद भी स्वीकार नहीं। क्षणिक वस्तुओं में कारण नहीं हो सकता। क्योंकि कार्य को उत्पन्न करने के लिये (कारण) में क्रिया होनी चाहिये। इस तरह उसकी सत्ता एक क्षण से अधिक होनी चाहिये जो क्षणिकवाद के विरुद्ध पड़ता है। यदि क्षणिक तत्वों की किसी तरह उत्पत्ति मान भी लेते हैं तो फिर उनका संयोग नहीं बनता क्योंकि बौद्ध मतानुसार कोई द्रव्य नही माना गया है जो इन तत्वों को एक साथ मिलाकर अभीष्ट विषय को उत्पन्न करें।

इसी तरह आचार्य शंकर विज्ञानवादी-बौद्धों के मत-''विज्ञान आत्मा है'' का भी जोरदार खण्डन करते हैं। यदि बाल्य वस्तुओं का अस्तित्व न होता तो यह

भी नहीं कहा जा सकता है कि आन्तरिक विज्ञान ही वाह्य वस्तुओं की तरह दिखलाई पड़ते हैं। इसी अनुक्रम में आचार्य शंकर नैयायिकों के अन्यभाख्याति वाद, शून्यवादी बौद्धों के भ्रम सिद्धांत असत्ययातिवाद करते हैं।

NOTES

आचार्य शंकर सत्ता को विविध कोरियों में विभाजित करते है-प्रातिभासिक, व्यावहारिक एवं पारमार्भिक। रज्जु र्सफ सुक्ति रजत की प्राविभासिक जगत और जागतिक वस्तुओं की व्यावहारिक और ब्रह्मया आत्मा की एकमात्र पारमार्थिक सत्ता है।

माया ईश्वर की सर्गकारिणी शक्ति है जिसके द्वारा ईश्वर वैचित्यपूर्ण जगत की अद्भुत लीला करते हैं। आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है दोनों में वादात्म है। मोक्ष की प्राप्ति तत्वज्ञान द्वारा ही हो सकती है। अविद्या को दूर करने तथा ज्ञान प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम साधक को साधन चतुष्टय-नित्यानित्यवस्तु विवेक, इहामुत्रार्थ भोग विराग, शमदमादिसाधनसम्पत् और मुमुक्षत्व की सिद्धी करनी चाहिये। तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को किसी योग्य गुरू से वेदान्त का श्रवण करना चाहिये और उसके सिद्धांतों का मनन तथा निदिध्यासन करना चाहिये। तत्पश्चात् ऐसे शिष्य को गुरु 'तत्वमसि' का उपदेश देता है। गुरु की इस उक्ति का शिष्य मनन करता है और अंत में उसे साक्षात् ज्ञान होता है कि अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रम्ह हूँ) यही पूर्णज्ञान है और इसी को मोक्ष कहते हैं। आचार्य शंकर जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति देनों में विश्वास करते हैं।

4.1.9.2 रामानुज वेदांत - विशिष्ट द्वैत मत

आचार्य रामानुज, शंकर के जगत विचार एवं मायावाद से बिल्कुल संगति नहीं रखते हैं। ईश्वर की पारमार्थिक सत्ता है। अचित् या अचेतन प्रकृति और चित् या चेतन आत्मा ईश्वर के ही अंश हैं। ईश्वर सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है। ईश्वर में अचित तत्व सर्वदा वत्रमान रहता है। इसी अचित् तत्व से ईश्वर संसार की रचना उसी प्रकार से करते हैं जैसे मकड़ी अपने अन्दर के रस से जाले का निर्माण करती है। आत्मा भी सर्वदा ईश्वर में वत्रमान रहते हैं। कर्मानुसार प्रत्येक आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है। शरीर युक्त होना ही बंधन है। आत्मा

NOTES

का शरीर से पूरा-पूरा सम्बंध विच्छेद ही मोक्ष है। अज्ञानता के कारण जीव इन्द्रिय सुख के लिये लालायित रहता है और संसार में आसक्त हो जाता है और इसी आसक्ति के कारण उसे बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। अनासक्त भाव से वेदविहित धर्मों का आचरण करने से कर्मों की संचित शक्ति नष्ट हो जाती है और अनंत ज्ञान प्राप्त होता है। साथ ही साथ यह भी ज्ञान हो जाता है कि ईश्वर की एकमात्र सत्ता है और प्रेम के योग्य भक्त दिनरात ईश्वर की भक्ति और याद में डूब जाता है भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर ईश्वर उसे अपनी शरणागति प्रदान करते हैं और अंत में भक्त पर ईश्वर अपनी कृपा कादम्बनी की दृष्टि करते हुये उसे भवबन्धन से मुक्त कर देते हैं। मुक्त आत्मा देहान्त के बाद कभी जन्म नहीं ग्रहण करता। वह ईश्वर सदृश हो जाता है। परन्तु किसी भी स्थिति में भक्त और भगवान (जीव आत्मा) और ब्रह्म में तादाम्य नहीं हो सकता।

सारांश

उपुर्यक्त समस्त नास्तिक और आस्तिक दर्शनों की विषयवस्तु का विवेचन करने के उपरान्त सारांश रूप में हम कह सकते हैं कि प्रायः समस्त भारतीय दर्शनों का आन्तिम उद्‌देश्य उस मार्ग का अनुसंधान करना है उस उपाय का आविष्यकार करना है जिस पर चलकर, जिसको सिद्ध कर जीव के दुःखों का आत्यन्तिक रूप से अंत किया जा सके। चार्वाक दर्शन को छोड़कर प्रायः समस्त भारतीय दर्शन काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद मात्सर्य को आध्यात्मिक शत्रु के रूप में स्वीकार करते हैं और इनकी सदा-सर्वदा समाप्ति के लिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि के सतत आचरण को आध्यात्मिक प्रगति हेतु आवश्यक मानते हैं। चाहे भक्ति मार्गी दार्शनिक हो अथवा ज्ञानमार्गी अथवा जैन, बौद्ध जैसे नास्तिक सभी यह स्वीकार करते हैं कि संसार एवं सांसारिक भोग वस्तुओं में आसक्ति ही वस्तुतः बन्धन (दुःख) का कारण है और अनासक्त भाव से कर्म करते हुये जब जीव शरीर बन्धन से ऊपर उठ जाता है तो उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

शब्दावली :

NOTES

नास्तिक दर्शन : वे दर्शन जो वेद को प्रमाण नहीं मानते हैं और कदाचित वेदों की आलोचना भी करते हैं। चार्वाक, जैन और बौद्ध नास्तिक दर्शनों की श्रेणी में आते हैं।

आस्तिक दर्शन : वे दर्शन जो वेदों को प्रमाण मानते हैं इसके अन्तर्गत न्याय, वैशेषिक, साँख, योग, मीमांसा और वेदान्त दर्शन आते हैं।

तीर्थकर : जैन दार्शनिक ईश्वर में विश्वास नहीं करते। वे जेन मत के प्रवत्रकों (तीर्थकर) में ही ईश्वर के सदृश श्रद्धा भाव रखते हैं। जैन दर्शन में ऐसे तीर्थकरों की संख्या 24 मानी गयी है।

पुद्‌गल : जैन दर्शन में जडतत्व को पुद्‌गल कहा जाता है।

कषाय : जैन दर्शन में जीव की कुप्रवृत्तियों-क्रोध, मान, माया, लोभ जो बंधन (पुनर्जन्म) का कारण है को ही कषाय कहा गया है।

आसव : जीव की तरफ कर्म पुद्‌गल के प्रवाह को आस्रव कहा जाता है।

संवर : जीव की तरफ होने वाले कर्म पुद्‌गल का प्रवाह बंद हो जाय, इसी को सेवर कहा जाता है।

निर्जरा : जीव में जो पुद्‌गल पहले से ही प्रविष्ट हो चुके हैं वे कमजोर होकर समाप्त हो जाय इसी को निर्जरा कहा जाता है।

अर्निवचनीय : जिसका वर्णन वाणी (शब्द आदि) के माध्यम से न किया जा सके। उसी सत्ता को अर्निवचनीय कहा जाता है।

सूची प्रश्न

1. भारतीय दार्शनिक विशेषता के रूप में कर्मवाद का विवेचन कीजिये।
2. क्या भारतीय दर्शन निराशावादी है? स्वपथा के समर्थन में तर्क दीजिये।
3. चार्वाक दर्शन की तत्वमीमांसा का निरूपण कीजिये।
4. जैन दर्शन की विषय वस्तु पर प्रकाश कीजिये।
5. जैन 'त्रिरत्न' मोक्ष के साधन हैं। इस तथ्य की विवेचना कीजिए।
6. बौद्ध दर्शन के द्वितीय आर्यसत्य की विशेषताओं का निरूपण कीजिए।

NOTES

7. न्याय दर्शन की विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
8. न्याय दर्शन के अनुमाण प्रमाण की व्याख्या कीजिये।
9. वैशेषिक दर्शन की 'पदार्थ मीमांसा' का निरूपण कीजिए।
10. साँख्य के विकासवाद सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
11. अण्यंग योग का निरूपण कीजिए।
12. मीसांसा दर्शन की विषय-वस्तु पर एक निबन्ध लिखिये।
13. शंकर और रामानुज के ईश्वर सम्बंधी विचारों का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

प्रदत्त कार्य

1. भारतीय आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का सूचीबद्ध विवेचन कीजिए।
2. चार्वाक के नैतिक विचारों के सम्भावित प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।
3. अष्टांगिक मार्ग की साधना निर्वाण प्राप्ति में कैसे सहायक है वर्णन कीजिए।
4. जैन दर्शन के अहिंसा सम्बंधी विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
5. भारतीय तर्कशास्त्र के विकास में न्याय दर्शन के योगदान का निरूपण कीजिए।
6. 'अष्टांगिक योग' चित्त वृत्तियों के निरोध में कैसे सहायक है? वर्णन कीजिए।
7. मीमांसा दर्शन के प्रामाण्यवाद का निरूपण कीजिए।
8. वेदान्त दर्शन से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषतायें बताइये।

उपयोगी ग्रन्थ

1. सर्वदर्शन संग्रह : भाष्यकार डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी।
2. भारतीय दर्शन : डॉ. बी.एन.सिंह।
3. भारतीय दर्शन : प्रो. संगमलाल पाण्डेय।
4. Indian Philosophy : Prof. C.D. Sharma

दार्शनिक साहित्य : उद्भव और विकास

इकाई की रूपरेखा

भूमिका :

उद्देश्य :

4.2.1 भारतीय दार्शनिक साहित्य : उद्भव और विकास

4.2.2 वैदिक साहित्य

4.2.3 महाकाव्य काल : महाभारत (भगवद्गीता)

4.2.4 जैन एवं बौद्ध दर्शन

4.2.5 सूत्रकाल : न्याय एवं वैशेषिक

4.2.6 सॉख्य एवं योग दर्शन

4.2.7 मीमांसा एवं वेदान्त

सारांश

शब्दावली

सूची प्रश्न

प्रदत्त कार्य

उपयोगी ग्रन्थ

यूनिट-द्वितीय

NOTES

भूमिका :

भारतीय दार्शनिक साहित्य के उद्‌भव और विकास का विवेचन अत्यंत टेढ़ीखीर हैं। कारण कि भारतीय दर्शन का उद्‌भव चिन्तकों और ऋषि-मुनियों की उन वाणियों और उपदेशों के द्वारा हुआ जिनका साक्षात्कार उन्होंने अपनी प्रमाद साधना के समय किया। साथ ही उक्त साक्षात्कार या दिव्यानुभूति विभिन्न दार्शनिक समस्याओं या प्रश्नों को लेकर चिन्तकों द्वारा विभिन्न देशकाल में किये गये। ऐसे में एक सामान्य दार्शनिक प्रवृत्तियों या विशेषताओं का निर्धारण भी प्रायः कठिन रहा है। ऐसी स्थिति में दार्शनिक साहित्य के उद्‌भव एवं विकास का तिथिवार ऐतिहासिक विवेचन दार्शनिक मत-मतान्तरों को सहज निमंत्रण देना है।

फिर भी यह निर्विवाद सत्य है कि वेद, भारतीय मनीषा की प्रथम अभिव्यक्ति है। परन्तु वेदों की रचना कब हुई, इस सम्बंध में निश्चित रूप से विद्वानों में मतैक्यता स्थापित करना प्राय असंभव सा है। हाँ, पाश्चात्य दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निश्चित रूप से भारतीय दर्शन की प्राचीनता का आंकलन किया जा सकता है। ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में पाश्चात्य दर्शन के जनक थेलीज का जन्म युनान में हुआ। यह समय हमारे देश में महात्मा बुद्ध के आविभीव का है। महात्मा बुद्ध के पहले (अर्थात् पाश्चात्य दर्शन के जनक थेलीज के पूर्व) इस देश में महावीर स्वामी का जैन दर्शन, उसके पहले महाकाव्य काल के अन्तर्गत रामायण एवं महाभारत (विश्व भर में समादृत गीता दर्शन महाभारत का एक अंश है) दर्शन इसके भी पूर्व सम्पूर्ण महान औषनिषद साहित्य, इसके भी पूर्व आरण्यक एवं ब्राह्मण साहित्य और उसके भी पूर्ण सम्पूर्ण संहितायें अपने वत्रमान कलेवर को प्राप्त कर चुकी थीं। इस स्थल पर तो भारतीय दर्शन की प्राचीनता के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है। तार्किक रूप से वेदों की रचना काल परिणामतः भारतीय दार्शनिक साहित्य की प्राचीनता का निर्धारण पृथक रूप से उचित स्थल पर करना ठीक होगा।

उद्देश्य :

NOTES

इस इकाई का उद्देश्य पाठकों को भारतीय दार्शनिक साहित्य के उद्भव और विकास से परिचित कराना है। इस इकाई का अध्ययन कर आप भारतीय दार्शनिक साहित्य के उद्भव और विकास से रूबरू हो सकेंगे। साथ ही यह भी जान सकेंगे कि सभ्यता के उषः काल में (अनैतिहासिक काल) जब प्रेस और छापेखाने का आविष्कार नही हुआ था उस समय इस देश की महान धरती पर ज्ञान का प्रथम आलोक फैला। विशुद्ध तर्क एवं दिव्य साक्षात्कार से प्राप्त ज्ञान की दार्शनिक प्रविष्ठा की गयी। इस काल में प्रायः लेखन कला का आविष्कार नहीं हुआ था अतः ऋषियों-मुनियों ने अपनी विशिष्ट साधना काल में प्राप्त दिव्य ज्ञान को सूत्र शैली माध्यम से अपने प्रिय शिष्यों को दिया। दर्शन जगत में साहित्य की यह यात्रा सूत्रकाल के नाम से जानी जाती है। इस इकाई में सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक साहित्य के उद्भव एवं विकास की कहानी को उसकी विशेषताओं सहित सार रूप में व्यक्त किया जायेगा। परिणामतः पाठक भारतीय दर्शन की प्राचीनता से अवगत हो सकेंगे।

4.2.1 भारतीय दार्शनिक साहित्य : उद्भव और विकास

भारतीय दर्शन साहित्य के विकास का इतिहास वैदिक साहित्य से लेकर आज तक समस्त दार्शनिक कृतियों की क्रमबद्ध आलोचना है। इस साहित्य का प्रथम चरण इतना अंधकारमय है कि इसके बीच तारागणों के प्रकाश के समान केवल वैदिक मन्त्रो को छोड़कर अन्य किसी प्रकार के साधन से आलोक की प्राप्ति नही होती है। वैदिक मंत्रों, ब्राहमणों एवं उपनिषदों का रचनाकाल इतना अनिश्चित है कि हम इनमे किसी प्रकार के ऐतिहासिक क्रम और काल का निश्चय नही कर सकते। वेद प्राचीन ऋषियों के स्तवन एवं उपदेशों के ऐसे समूह है जिनको कालान्तर में विषयक्रम के आधार पर संग्रहीत किया गया। यदि वेदों के रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ निश्चय हो भी सके तो यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किस ऋषि के कण्ठ से वास्तव में कौन-कौन से मन्त्र स्फुटित हुये। ऋषियों की वाणी को, उनके दृष्ट मन्त्रों को संकलित करके संहितायें बनायी गयी।

NOTES

इसी बीच ऋषियों ने कर्मकाण्ड और ज्ञान सम्बन्धी अपने विचार शिष्यों के प्रति प्रकट किये जो प्रायः गद्य मे थे। बाद में उनको ब्राहमण कहा गया। संहिताओं और ब्राहमणो के गूढ़ और गूढ़तः विचारों को क्रमशः आरण्यक् तथा उपनिषद् कहा गया। यह निर्धारित करना कठिन है कि पहले संहिताओं की रचना हुई फिर ब्राहमणों की तत्पश्चात उपनिषदों की परन्तु संहिता से ब्राहमण और ब्राहमण से उपनिषद इस ऐतिहासिक क्रम की अवधारणा निर्मूल सी प्रतीत होती है। वास्तव मे संहिता, जिनमें ऋषियों के स्वतन संकलित है और ब्राहमण और उपनिषदों की रचना एक ही काल में हुई। जिसका प्रसार अनेक शताब्दियों तक रहा। लेकिन इस काल के विषय में किसी प्रकार का निश्चय जब तक उपयुक्त प्रमाणों की उपलब्धि न हो केवल कल्पना के आधार पर नहीं किया जा सकता। सत्य केवल इतना है कि वैदिक साहित्य भारतीय मनीषा की प्रथम अभिव्यक्ति है। इसने परवर्ती धर्म, समाज व्यवस्था नीति एवं मनुष्य की आध्यात्मिक कल्पनाओं पर पूर्ण प्रभाव डाला है।

उपनिषद् भारतीय ज्ञान तथा दार्शनिक विचारधाराओं के मूल ग्रन्थ हैं। ऐसा अनुमान है कि जिज्ञासु अपनी शंकाओं को लेकर ऋषियों के समक्ष जाते थे और ऋषिगण एक-एक करके उनकी शंकाओं का तर्क तथा अपनी अनुभूति के आधार पर समाधान करते थे जिससे उन जिज्ञासुओं को परमपद के वास्तविक स्वरूप का परिचय मिलता था। ऋषियों की ये विचारधारायें ही उपनिषद् के विषय हैं। जिज्ञासु की शंकायें तथा उनके समाधान किसी एक क्रम से नहीं होते थे अतएव उनमें परवर्ती शास्त्रों के समान कोई भी विचार हमें क्रमबद्ध रूप से नहीं मिलता है। फिर भी उपनिषद् साहित्य समस्त भारतीय दर्शन के उत्स है।

यद्यपि उपनिषद् काल की रचनाओं में किसी प्रकार का क्रम तथा वर्गीकरण उपलब्ध नहीं है-तथापि कालान्तर में विषयों के आधार पर उनके वर्णित तत्वों के स्वरूप सूत्रों के रूप में मिलता है। इन सूत्रों की रचना का मुख्य कारण बौद्ध मतानुयायियों का वेदों के ऊपर आक्षेप प्रतीत होता है। विषयों का वर्गीकरण प्रायः तभी होता है जब उनके समझने में कठिनाई हो अथवा कोई अन्य प्रायोजन हो। बौद्धों द्वारा वैदिक धर्म के विरुद्ध किये गये आक्षेपों के

समाधान हेतु वैदिक धर्मावलम्बियों ने विविध सामग्री एकत्र की। तब भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से तत्वविचारों को क्रमबद्ध करने के प्रयत्न होने लगे। इन विचारों के समन्वय की एक दृष्टि बतलायी गयी। उससे एक सोपान परम्परा का निर्माण किया गया। फिर प्रतिपाक्षियों के साथ तर्क-वितर्क करने की तैयारी की गयी। परवर्ती दर्शनिक सूत्रों के निर्माण का यही कारण था। बौद्धों के साथ तर्क करने के लिये गौतम ने न्याय सूत्र की रचना की । वेदों के अभिप्राय की रक्षा करने के लिये महर्षि जैमिनी ने मीमांसा सूब बनाये। इसी प्रकार अन्य दार्शनिक सूत्रों की भी रचनायें हुई।

सूत्रों में दार्शनिक सिद्धान्त संक्षिप्त एवं साररूप मे कह गये हैं क्योंकि उस समय गुरू और शिष्यों में विचार-विनियम प्रायः मौखिक ही हुआ करता था। अतः यह आवश्यक था कि उन सिद्धान्तो को स्मरण रखने के लिये उनका वर्णन संक्षित्त रूप में किया जाय। बहुत काल तक यह शिक्षा प्रणाली इसी रूप में चलती रही लेकिन कालान्तर मे विद्वानों को यह ज्ञात होने लगा कि परम्परागत सूत्रों के अर्थ के विषय में विभिन्न शाखाओं के अन्तर्गत मतभेद पैदा हो गये है। इस कारण तथा सूत्रों के अर्थ को नवीन आक्षेपों की पृष्ठभूमि पर पुनः प्रतिपादित करने के लिये आचार्यो ने भाष्यों रचनाकी । परम्परागत गुरू मुख से सुने हुये सूत्रार्थों में भेद होने के कारण अनेक भाष्यों की रचनायें हुई। यथा-वादरायण के ब्रह्मसूत्र पर शंकर, रामानुज, मध्व, बल्लभ, निम्बकि, विज्ञानभिक्षु आदि आचार्यों के भाष्य उपलब्ध हैं। इसके बाद इन भाष्यों के अर्थ को सुदृढ़ करने के लिये तथा उनके-विरुद्ध किये गये आक्षेपों का निराकरण करने के लिये वात्रिकों तथा टीकाओं की रचना हुई। यह क्रम इतना विकसित हुआ कि टीका की टीकायें भी लिखी गयी जिन्हें टिप्पणी कहा गया और कमी-कभी इन टिप्पणियों की भी टिप्पणियाँ लिखी गयी। इस प्रकार सूत्र, भाष्य, वात्रिक, टीका, टिप्पणी ये पाँच ग्रन्थ शैलियाँ भारतीय दर्शन के विकास का इतिहास बताती है। इनमें से सूत्र, भाष्य औार वात्रिक लिखने वाले अत्यन्त मौलिक दार्शनिक माने जाते है। कभी-कभी भाष्य से लेकर टिप्पणी तक को साधारणतः भाष्य के अन्दर ही कहा जाता है।

NOTES

NOTES

अतः संक्षेप में सामान्यतः भारतीय दर्शन के इतिहास को चार भागों मे बाँटा जाता है।

1. वैदिक काल : इस काल मे वैदिक मन्त्रों, ब्राहमर्णो एवं उपनिषदों की रचनायें हुई।

2. महाकाब्य काल : इस काल में रामायण और महाभारत की रचनायें हुई। भारतवर्ष के प्रमुख दार्शनिक काव्य श्री मद्‌भगवद्‌गीता की रचना भी इसी काल मे हुई । बौद्ध और जैन धर्मों का आविभीव तथा भाष्य काल में प्रतिपादित सिद्धान्तों की मूल विचारधाराओं का विकास भी इसी काल में हुआ था।

3. सूत्र काल इस काल में षड़दर्शनों के सूत्रों की रचना हुई। गौतम ने न्यायसूत्र, कणाद ने वैशेषिक, कपिल ने साँखसूत्र, पतंजलि ने योगसूत्र जैमिनी ने मीमांसा सूत्र तथा वादरायण ने वेदान्त सूत्र की रचना की

4. भाष्य काल इस काल में आचार्यों ने सूत्रों पर भाष्यों की रचना की। तथा उनके अनुयायियों ने उन पर वात्रिक तथा टीकायें लिखे। इसी कारण एक ही सूत्र पर अनेक भाष्य, वात्रिक तथा टीकायें बन गये। इस काल में दार्शनिक सिद्धान्तों का स्वरूप भलीभँति निखर आया तथा अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों की रचना हुई। इस काल का दर्शन साहित्य जटिल एवं दुष्ह तर्कों से परिपूर्ण है। उनके पर्यावलोकन से प्रमाणित होता हैं कि इस काल में भारतीय तर्क पद्धति अत्यन्त उच्च शिखर पर पहुँच गयी थी। इस काल में अन्यान्य स्वतन्त्र रचनायें भी हुई। जैसे हरिभद्र का षड्‌दर्शन समुच्चय और माधवाचार्य का सर्वदर्शन संग्रह आदि। किन्तु यह विभाजन वास्तव में प्राचीन भारतीय दर्शन का है। इससे भी आगे भारतीय दर्शन का विकास आज तक हुआ है और हो रहा है। प्राचीन भारतीय दर्शन से भिन्न एक नया स्वर आधुनिक भारतीय भाषाओं मे सन्तवाणियों ने दिया है उनके दर्शन को सन्तमत कहा जाता है। इस दर्शन का प्रभाव शाश्वत है और इसमें तमिल के आलवार भक्तों से लेकर रमण महर्षि तथा महर्षि अरविन्द तक संत तथा ऋषिगण शामिल है। इस परम्परा के सन्तों मे युगान्तकारी प्रभाव कबीर, नानक, तुलसीदास तथा नाभादास का रहा है।

4.2.2 वैदिक साहित्य

NOTES

"मन्त्र ब्राहमणयोः वेदनामधेयं" मन्त्र साहित्य और ब्राहमण मिलकर वेद कहलाते है। वेद का शाब्दिक अर्थ ज्ञान है। वेद भारतीय दर्शन के मूल कहे जाते है। पर इनके काल के विषय में विद्वानों में परस्पर वैचारिक असहमति है। मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक "History of Ancient Literature" में वेदों का काल 1200 ईसा पूर्व बताया हैं। तिलक और याकोरी ने ज्योतिष के साक्ष्य पर अपनी स्वतन्त्र गवेषणाओं के आधार पर वेदों का काल क्रमशः 6000 वर्ष और 4500 वर्ष ईसा पूर्व बताया है। प्रो. ब्लूमफील्ड वैदिक युग का प्रारंभ 2000 ई.पू. मानते है। विण्टर निट्ज के अनुसार वेदों की रचना 2500 से 1500 ई.पू. हुई होगी। काल के विषय में इतनी भिन्नता होते हुये भी विद्वानों की वह सामान्य मान्यता है कि वेदों की रचना, पार्श्व महावीर एवं गौतम बुद्ध के पूर्व पूर्णरूपेण सम्पन्न हो चुकी थी। अवएव इनका रचना काल लगभग 750 ई.पू. के पहले किसी भी समय निर्धारित किया जा सकता है। वत्रमान समय में इससे अधिक निश्चयात्मक रूप मे कहना सम्भव नही है।

वेदों के चार भाग : वेद किसी एक ग्रन्थ का नाम नही है वरन् सम्पूर्ण साहित्य राशि का नाम है। इसके चार भाग हैं-1. संहिता, 2. ब्राहमण, 3. आरण्यक् 4. उपनिषद।

1. **संहितायें** : संहितायें चार है- 1. ऋक् संहिता, 2. यजुष संहिता, 3. साम संहिता, 4. अथर्वसंहिता। संहितायें पद्य काव्य है जो विभिन्न देवताओं की स्तुति के लिये निर्मित की गयी हैं किसी यज्ञ सम्पादन के लिये चार पुरोहितों की आवश्यकता होती है। प्रथम होता-जो देवताओं के आवाहन के लिये उनकी प्रशंसा में मंत्रों उच्चारण करता है। द्वितीय-उद्भाता जो देवताओं को प्रसन्न करने व उनका मनोरंजन करने के लिये मन्त्रों को संगीत स्वर में गाता है। तृतीय अध्वर्युजो कर्मकाण्ड के नियमों के अनुसार यज्ञ मे आहुति देता है और चतुर्थ ब्रह्मा जो वैदिक यज्ञों का सामान्य निरीक्षण करता है। होता की आवश्यकताओं की सिद्धि के लिये ऋक् संहिता, उद्भाता हेतु साम संहिता, अध्वर्यु के लिये यजुष

NOTES

संहिता और ब्रह्मा की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये अथर्व संहिता का प्रणयन किया गया।

2. ब्राहमण : ब्राहमण ग्रन्थों मे यज्ञ का विघान, यज्ञ के लिये अनुकूल द्रव्य, यज्ञ सम्बन्धी आख्यापिका इत्यादि उपलब्ध होते है। मन्त्र छन्दबद्ध रचना है जब ब्राहमण गद्यात्मक होता है। ब्राहमण ग्रन्थों मे यज्ञ की विधि की प्रधानता है। विधि याज्ञिक अनुष्ठान का उपदेश है। इस उपदेश का तात्पर्य यह है कि यज्ञ का विधान का कैसे हो, यज्ञ में किन साधनों का उपयोग किया जाय। यज्ञ के अधिकारी कौन है? इत्यादि। ब्राहमण ग्रन्थों मे इनकी विशद विवेचना है। शतपथ ब्राहमण मे विधि-विधान का बड़ा विशद विवेचन है।

3. आरण्यक् : सामान्यतः ब्राहमण ग्रन्थों के अन्तिम भाग है इनका यह नाम सम्भवतः अरण्य में निवास करने वाले वानप्रस्थ मुनियों के द्वारा उच्चरित होने के कारण या अरण्य की शान्ति में शिष्यों को उपदिष्ट होने के कारण पड़ा। इनमें यज्ञों का प्रतीकात्मक विवेचन एवं पौरोतित्योन्मुख दर्शन प्राप्त होता है। आरण्यक् में ब्राहमण ग्रन्थों के कर्मकाण्ड और उपनिषदों के ज्ञान-काण्ड के बीच सेतु स्थापित किया गया है।

4. उपनिषद : आरण्यकों के अन्तिम भाग को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषद वेद के दार्शनिक चिन्तन की परिणति को प्रस्तुत करते हैं। इन्हें वैदिक साहित्य का चरम भाग कहा जाता है। आत्मानंद की प्राप्ति आत्मज्ञान से सम्भव है। आत्मज्ञान से ही भव-बन्धन का विनाश सम्भव है। अतः जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा पाकर आत्मानंद की प्राप्ति ही उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय है।

मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 बतलायी गयी है इनमें 11 उपनिषद प्रमुख है ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्विरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, श्वेताश्वतर, वृहमारण्यक् आदि ।

4.2.3 महाकाव्य काल : महाभारत (भगवद्गीता)

गीता महाभारत के शांतिपर्व का अंश है। सम्पूर्ण वेदों का सार गीता के सात सौ श्लोकों में संग्रह किया गया है। गहनतम भावों की सरलतम अभिव्यक्ति

गीता की सबसे बड़ी विशेषता है। गीता का महात्म्य बतलाते हुये स्वयं भगवान कहते है कि गीता मेरा हृदय है। गीता मे हृदय पार्य!।

गीता का साहित्य बड़ा विशाल है। प्रायः इस देश के सभी आचार्यों ने गीता पर भाष्य लिखे हैं। और गीता के तात्पर्य को बतलाने का प्रयास किया है। सभी आचार्य अपने-अपने दृष्टिकोण से गीता की व्याख्या करते है सबकी व्याख्या प्रामाणिक है परन्तु किसी भी आचार्य की व्याख्या अन्तिम नहीं। श्री शंकराचार्य द्वारा विरचित 'शांकर गीता भाष्य' संभवतः सबसे प्राचीन भाष्य है। इस ग्रन्थ में आचार्य ने गीता की अद्वैतवादी व्याख्या प्रस्तुत की है। श्री आनंदज्ञान ने शांकर गीता भाष्य पर 'भगवद्गीता भाष्य विवरण' नाम की टीका लिखी है और रामानंद ने 'भगवद्गीता भाष्य व्याख्या' नामक ग्रन्थ लिखा है। आचार्य शंकर के बाद रामानुज के महान गुरू यामुनाचार्य ने गीतार्थ संग्रह नामक ग्रन्थ लिखा जिसमें गीता का सार प्रस्तुत किया गया है। विख्यात वैष्णव आचार्य श्री रामानुज ने 'गीताभाष्य' लिखा है। जिसमे उन्होने विभिष्यद्वैत मत का प्रतिपादन किया है। श्री मध्वाचार्य या आनंदतीथ ने गीता पर 'गीताभाष्य' लिखा है। राघवेन्द्र स्वामी ने गीता पर तीन ग्रन्थ लिखे हैं- गीता विवृन्ति, गीतार्थ संग्रह और गीतार्थ विवरण। बल्लभाचार्य और निम्बाकीचार्य ने भी गीता पर भाष्य लिखा है। इनके अतिरिक्त आंजनेय ने हनुमद भाष्य, कल्याणभट्ट ने रसिक रजिनी, जगद्धर ने गीता-प्रदीप, जयराम ने गीता सारथि संग्रह बलदेव विद्या भूषण ने गीता भूषण भाष्य, मक्षरानाथ ने गीता प्रकाश, दन्तात्रेय ने प्रबोध चन्द्रिका, श्रीघर स्वामी ने सुबोधिनी सदानंद व्यास ने भाव-प्रकाश, सूर्यपण्डित ने परमार्थ प्रथा, नीलकंठ ने भावदीपिका आदि भाष्य लिखे हैं। इस प्रामाणिक भाष्यों के अतिरिक्त गीता के सामान्य तात्पर्य पर भी अनेकानेक ग्रन्थ लिखे गये है।

आजकल तो प्रायः सभी प्रान्तीय भाषाओं में गीता पर प्रामाणिक भाष्य उपलब्ध है जैसे-वैगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलगू आदि सभी भाषाओं में गीता की व्याख्या उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त विदेशी भाषाओं मे भी गीता का अनुवाद और गीता पर भाष्य उपलब्ध है। सच तो वह है कि गीता पर ग्रन्थ

गणना की ही नही जा सकती। केवल संस्कृत भाषा में ही इसपर 1500 व्याख्या और टीका सम्मवतः लिखी जा चुकी है।

NOTES

4.2.4 जैन एवं बौद्ध दर्शन साहित्य

जैनियों के अनुसार जैन मत के प्रवत्रक चौबीस तीर्थकर थे। परम्परा के अनुसार ऋषभदेव को जैन धर्म के आदि प्रवत्रक, प्रथम तीर्थकर होने का गौरव प्राप्त है। पार्श्वनाथ 23वें तथा महावीर स्वामी 24वें तथा अन्तिम तीर्थकर के रूप में प्रसिद्ध हैं। अन्य 22 तीर्थकर प्रागैतिहासिक युग के हैं। सम्पूर्ण जैन धर्म तथा दर्शन ऐसे ही 24 तीर्थकर की वाणी या उपदेश का संकलन है। तीर्थकरों को 'जिन' भी कहा जाता है। इन्हें 'जिन' नाम इसलिये दिया गया है कि इन्होने रागद्वेष को जीतकर निर्वाण प्राप्त किया है। जैनियों का यह विश्वास है कि बंधनग्रस्त सभी जीव जिनों के दिखलाये मार्ग पर चल सकते हैं और उनकी तरह पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शक्ति तथा पूर्ण आनंद प्राप्त कर सकते है।

कालान्तर में जैनियों के दो सम्प्रदाय हो गये-श्वेतांबर तथा दिगम्बर। उल्लेखनीय है कि इन सम्प्रदायों मे मूल सिद्धान्तों का भेद नही है। बल्कि उनका भेद आचार-विचार सम्बन्धी कुछ गौण बातों को लेकर हैं। दोनों ही सम्प्रदायों के लोग तीर्थकरों के उपदेशों को समान रूप से मानते है। अंतर विशेष रूप से उनमें यह है कि श्वेताम्बर अपेक्षाकृत उदार होते हैं जबकि दिगम्बर अपने धर्म के प्रति अत्यन्त कट्टर होते है। श्वेताम्वर जहाँ सफेद वस्त्र घारण करते हैं वहीं दिगम्बर संन्यासी वस्त्रों का भी प्रयोग उचित नही मानते। वे हमेशा नंगे ही रहते है। दिगम्बरों के अनुसार पूर्व ज्ञानी महात्माओं को भोजन की आवश्यकता नही होती। साथ ही जब तक स्त्रियाँ पुरूष योनि में जन्म न ले लें तब तक वे मुक्ति नहीं पा सकती। लेकिन श्वेताम्बर लचीला रूख अपनाते हुये इन विचारों को स्वीकार नही करते।

जैन दर्शन का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है यह अधिकांशतः प्राकृत भाषा में है। आज जो भी जैन साहित्य उपलब्ध हैं वह भगवान महावीर का उपदेश है। महावीर ने जो भी उपदेश दिया उसको उनके गणघरों ने ग्रन्थ रूप में रचा।

महावीर के प्रधान गणधर गौतम इन्द्रभूति थे। उन्होंने महावीर के उपदेशों को 12 अंग और चौदह पूर्व के रूप में निबद्ध किया। पाठकों की सुविधा के लिये श्वेताम्बर और दिगम्बर मतों का पृथक-पृथक विवेचन निम्नानुसार वर्णित है।

NOTES

दिगम्बर साहित्य :

महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद केवल तीन केवलज्ञानी तथा पाँच श्रुतकेवली हुये। इनमें अन्तिम श्रुतकेवली भद्याहु थे। इनके बाद षट्खण्डागम नामक सूत्रग्रन्थ की रचना हुई। इसी समय गुणघर आचार्य ने 223 गाथाओं मे कषायप्राभृत ग्रन्थ की रचना की। इन दोनों ग्रन्थों पर अनेक टीकायें लिखी गयी। ईसा की प्रथम शताब्दी में कुन्दकुन्द नामक आचार्य ने तीन ग्रन्थ लिखे-समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय।

श्वेताम्बर साहित्य :

इस सम्प्रदाय का साहित्य 6 भागों मे विभक्त है-ग्यारत अंश, बारह उपांग, दस प्रकीर्णक, छः वेदसूत्र, दो सूत्र और चार मूल सूत्र।

उक्त के अलावा कालान्तर मे संस्कृत भाषा में बहुत सारे ग्रन्थ लिखे गये। आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य श्री उमास्वामी द्वारा रचित 'तव्वार्यसूत्र' जैन दर्शन का पहला संस्कृत ग्रन्थ है। अकलंकदेव जैन न्याय के प्रकांड पंडित थे। इनके प्रमुख ग्रन्थ है सिद्धिविनिश्चय, न्यायविनिन्य, लभीयस्त्रय, प्रमाणसंग्रह आदि। इन ग्रन्थों पर अनन्तवीर्य, वादिराज और प्रमाचंद नामक आचार्यों ने अपनी-अपनी व्याख्यायें लिखी हैं। माणिक्यनंदि का 'परीक्षा मुख' जैन न्याय का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस पर आचार्य प्रभाचंद्र ने 'प्रमेय कमल मात्रण्ड' नामक व्याख्या ग्रन्थ लिखा है।

इनके अतिरिक्त सिद्धसेन दिवाकर का न्यायवतार, नेमिचंद्र का दृष्य संग्रह, हेमचन्द्र की प्रमाणमीमांसा, मल्लिसेन की स्याद्वादमंजरी, यथोविजय का तर्क परिभाषा प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है।

बौद्ध दर्शन साहित्य :

बौद्ध धर्म के प्रवत्रक गौतमवुद्ध थे महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन काल में न तो किसी ग्रन्थ की रचना की और न करायी ही। वे एक सच्चे धर्मोपदेशक

NOTES

थे। लोगों को सही मार्ग दिखाना ही उनका एकमात्र उद्देश्य था अतः किसी धार्मिक या दार्शनिक ग्रन्थ की रचना करने में उनकी स्वाभाविक अरुचि थी। वे तत्कालीन जनसाधारण की भाषा पालि में अपने सीधे-सादे उपदेशों को सुनाते थे। कहा जाता है कि महात्मा बु, के वचनों और उपदेशों का संकलन उनके निकटतम शिष्यों द्वारा त्रिपिटकों में ही हुआ है। बुद्ध के निजी उपदेशों का जो कुछ भी ज्ञान हमें आजकल प्राप्त है वह त्रिपिटकों से ही हुआ है। त्रिपिटकों की भाषा पालि है। त्रिपिटक तीन हैं-सुन्त पिटक, विनय तथा अभिधम्म पिटक। सुन्त पिटक में बुद्ध के वार्तालाप और उपदेशों का संकलन में है। इसमें बुद्ध कालीन धर्म, समाज, सभ्यता, संस्कृति, दर्शन, इतिहास आदि सभी का उल्लेख है। सुन्तपिटक पाँच निकायों में विभक्त है-दीर्घ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुन्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय। खुद्दक निकाय में पन्द्रह ग्रन्थ हैं। **अभिधम्य पिटक**-इसमें बुद्ध के दार्शनिक विचारों का संग्रह है। इसमें सात ग्रन्थ हैं। विनय पिटक-यह मुख्यतया आचार सम्बंधी नियमों का संकलन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में भिक्षुक बनने से लेकर भिक्षुक के चरित्र सम्बंधी सभी नियमों का वर्णन है।

कालांतर में बुद्ध के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गयी। धार्मिक मतभेद के कारण बौद्ध धर्म दो प्रधान शाखाओं-हीनयान के प्रमुख ग्रन्थ हैं। मद्यपान का दार्शनिक विवेचन संस्कृत में हुआ है अतः इसके ग्रन्थों की भाषा संस्कृत है। इनमें प्रमुख ग्रन्थों का विवरण निम्नानुसार है-नागार्जुन की माध्यमिक कारिका, आर्यदेव का चतुःशतक, चन्द्रकीत्रि की माध्यमिक वृत्ति शान्तिदेव का बोधिचर्यावतार, असंग का महायानसूत्रालंकार बसुबन्धु की विज्ञप्ति मात्र सिद्धि, विङ्नाश का प्रमाण समुच्चय आलम्बन परीक्षाद्व धर्मकीत्रि का न्याय बिन्दु, मनोरथ नंदी की प्रमाणवत्रिकवृत्ति, शान्तिरक्षित का तत्वसंग्रह आदि।

4.2.5 सूत्रकाल : न्याय और वैशेषिक

न्याय दर्शन के प्रवत्रक महर्षि गौतम थे। वे गौतम तथा अक्षवाद के नाम से भी प्रसिद्ध हैं अतः न्याय का दूसरा नाम अक्षपाद दर्शन भी है। न्याय दर्शन

में प्रधानतः शुद्ध विचार के नियमों तथा तत्वज्ञान प्राप्त करने के उपायों का वर्णन किया गया है।

NOTES

जहाँ तक न्याय दर्शन के साहित्य का प्रश्न है गौतम का न्याय सूत्र न्याय दर्शन का मूल ग्रन्थ है। न्यायसूत्र में पाँच अध्याय हैं। न्याय सूत्रों पर महर्षि वात्स्यापन द्वारा विरचित वात्स्यायन भाष्य है। इसका दूसरा नाम न्याय भाष्य ही है। इस ग्रन्थ पर अनेक टीकायें हैं जिनमें श्री सुदर्शनाचार्य की टीका श्री गंगानाथ झा की खद्योत टीका प्रसिद्ध है। न्याय भाष्य पर श्री भरद्वाज उद्योतकर का 'न्यायवात्रिक' नामक अत्यंत प्रशंसनीय ग्रन्थ हैं। न्यायवात्रिक पर श्री वाचस्पति मिश्रकृत 'न्यायवात्रिक तात्पर्य टीका' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में बौद्ध आक्षेपों का उत्तर युक्तिपूर्ण ढंग से दिया गया है। 'न्यायकुसुमांजलि' उदयनाचार्य द्वारा प्रणीत कालजयी रचना है। जयंतभट्ट की न्यायमंजरी भी न्यायदर्शन का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में जयंतभट्ट ने बौद्ध मत का युक्तिपूर्वक खण्डन किया है।

12वीं शताब्दी से नव्यन्याय का प्रारम्भ माना जाता है। इसके सर्वप्रथम आचार्य गंगेशोपाध्याय है। 'तत्वचिंतामणि' इनका अभूतपर्वू ग्रन्थ है। यह पण्डितों का परीक्षा ग्रन्थ है इस पर टीकाओं का अंत नहीं है। संभवतः न्यायशास्त्र में इतनी टीकायें किसी भी ग्रन्थ पर उपलब्ध नहीं।

इस ग्रन्थ में एक विशेष शैली का प्रयोग किया गया है। इसकी शैली इतनी लोकप्रिय बन गयी कि तत्वचिंतामणि के बाद जो भी ग्रन्थ संस्कृत में लिखे गये उन पर नव्य न्याय की शैली का प्रभाव पड़ा। तत्वचिंतामणि की तीन व्याख्यायें प्रसिद्ध है-रघुनाथ शिरोमणि की 'दीधिति'। पक्षधर मिश्र का अलोक और मथुरानाथ का रहस्य। इन तीनों ग्रन्थों पर भी अलग-अलग रूप से आचार्यों द्वारा अनेक टीकायें लिखी गयी जिन्होंने न्याय दर्शन साहित्य के विकास में अपूर्व योगदान किया।

न्याय दर्शन का उद्देश्य अन्य दर्शनों की तरह मोक्षप्राप्ति है। अर्थात् जीवन के दुःखों का किस तरह से नाश हो इसका उपाय ढूढ़ निकालना ही इसका अन्तिम उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूत्रि के लिये तत्वज्ञान प्राप्त करना तथा यथार्थ ज्ञान के लिये नियमों का जानना अत्यंत आवश्यक है। अतः अन्य

NOTES

दर्शनों की तरह न्याय भी जीवन की समस्याओं का ही समाधान करता है। सम्पूर्ण न्याय दर्शन को चार भागों में बाँटा जा सकता है प्रथम खण्ड में प्रमाण सम्बंधी, दूसरे में भौतिक जगत सम्बंधी तीसरे में आत्म तथा मोक्ष सम्बंधी तथा चौथे में ईश्वर सम्बंधी विचारों का वर्णन किया गया है।

वैशेषिक दर्शन साहित्य :

वैशेषिक दर्शन के प्रवत्रक महर्षि कणाद है। कहा जाता है कि वे इतने बड़े संतोषी थे कि खेतों से चुने हुये अन्नकणों के सहारे ही जीवनयापन करते थे इसलिए उनका उपनाम कणाद पड़ा। इस दर्शन का उपनाम औलूक्य दर्शन भी है। किवदन्ती है कि स्वयं भगवान ने उलूक रूप में अवतीर्ण हो इन्हें पदार्थ ज्ञान कराया था।

वैशेषिक दर्शन का सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ महर्षि कणाद का कणाद सूत्र अथवा विशेषिक सूत्र है। इस पर प्रशस्तपाद का पदार्थ धर्म संग्रह नामक प्रसिद्ध भाष्य है। प्रशस्तपाद भाष्य पर दो अत्यंत महत्वपूर्ण टीका लिखी गयी है पहली टीका श्री उदयनाचार्य की है जिसे किरणवली कहते हैं तथा दूसरी टीका श्रीधराचार्य की न्यायकन्दली के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद वैशेषिक दर्शन का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं प्राप्त होता वरन् न्याय और वैशेषिक दोनों का सम्मिश्रण अथवा दोनों सिद्धांतों का एक ही साथ प्रतिपादन प्राप्त होता है। जैसे-बल्लभाचार्य की न्याय लीलावती, अन्नभट्ट का तर्क संग्रह, श्री केशवामिश्र की तर्कभाषा श्री शिवादित्य की सप्तपदार्थी में प्रायः न्याय वैशेषिक सिद्धांतों का युगपद विवेचन प्राप्त होता है। श्री बल्लभाचार्य की न्याय लीलावती पर अनेक टीकायें लिखी गयी हैं। इसके अलावा रूद्राचार्य की रौद्री, दिनकर की दिनकरी, पं. ज्वाला प्रसाद गौड़ की विलासिनी, नीलकंठ की नीलकंठी, गोवर्धन की तर्कभाषा प्राकाभिका, गोपीनाथ की उज्जवला, चिन्तभट्ट की तर्कभाषा प्राकशिका, श्री केशवभट्ट की तर्कदीपिका, नागेश भट्ट की मुक्ति मुक्तावली टीका वैशेषिक दर्शन साहित्य के विकास में अप्रतिम योगदान करती है।

4.2.6 साँख्य एवं योग दर्शन साहित्य :

NOTES

महामुनि कपिल द्वारा पूर्ववर्ति साँख्य दर्शन समस्त आस्तिक दर्शनों में प्राचीनतम है। इसकी प्राचीनता इसी तथ्य से प्रमाणित हो जाती है कि श्रुति, स्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत आदि पुरातन कृतियों मे साँख्य योग के अनेकों दृष्टांत मिलते हैं।

साँख्य दर्शन का मूलग्रन्थ कपिल का तत्वसमाज है। यह अत्यन्त ही संक्षिप्त और सारगर्भित है। अतः साँख्य शास्त्र का मर्म विस्तारपूर्वक समझाने के लिये उन्होने 'साँख्यसूत्र' नामक विशद ग्रन्थ की रचना की। महार्षि कपिल की नित्य परम्परा में आसुरि तथा पंचशिखाचार्य के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आप दोनों ने साँख्य दर्शन पर सरल ग्रन्थ लिखे थे परन्तु वत्रमान में वे अनुपलब्ध है या काल के रति में समा चुके है। आज साँख दर्शन पर जो प्राचीनतम एवं प्रामाणिक ग्रन्थ उपलष्ध है वह है ईश्वर कृष्ण की साँख्य कारिका। इस ग्रन्थ में 70-72 कारिकाये है। ये कारिकायें संक्षिप्त तथा सारगार्भित होने के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इनकी लोकप्रियता इसी तथ्य से प्रमाणित हो जाती है इस ग्रन्थ पर ढेर सारी टीकाये लिखी गयी। साँख्यकारिका पर माष्रवृति, गौड़पादभाष्य जयमंगला, साँख्यतत्वकोमुदी तथा युक्त दीपिका आदि कई प्राचीन टीकाये है। इनके अतिरिक्त साँख्यतष्वसंत, साँख चन्द्रिका एवं तत्वप्रभा आदि अवीचीन टीकायें भी प्रसिद्ध है। सभी टीकाओं मे तत्वकौमुदी तथा युक्तिदीपिक अधिक पठन-पाठन में है। इनके अतिरिक्त भी साँख्य दर्शन के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जैसे अनिरूद्ध की साँख्यसूत्रवृत्ति, महादेव का साँख्यसूत्र विस्तार, नागेश की लघुसाँख सूत्रवृत्ति। विज्ञानमिक्षु का साँख्य प्रवचन भाष्य तथा साँख्य सार आदि। संस्कृत के अतिरिक्त अग्रेंजी और हिन्दी मे भी साँखदर्शन पर अनेक प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध है। योग दर्शन के पूणेता महार्षि पतंजलि है इसी कारण इस दर्शन को पातंजल दर्शन भी कहा जाता है।

इस दर्शन का सर्वप्रथम और प्रामाणिक ग्रन्थ योगसूत्र या पातंजल सूत्र है। यह चार भागों में विभक्त है जिसमें प्रत्येक भाग को पाद कहते है। समाधिपाद,

NOTES

साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद। योग सूत्रों पर व्यासमुनि का भाष्य है जिसे व्यासमाष्य या योगभाष्य कहते हैं। व्यासभाष्य पर दो साँख्यायें अति प्रसिद्ध है। पहली व्याख्या श्री वाचस्पति मिश्र कृत 'योगतत्व वैशारदी' है तथा दूसरी व्याख्या श्री विज्ञानभिक्षुकृत 'योग वात्रिक' है। इनके अतिरिक्त योगसूत्र पर भोजवृत्ति, अनिरूद्धवृत्ति तथा नागेशवृत्ति आदि अनेक वृत्तियाँ हैं। योग दर्शन का साहित्य अन्य दर्शनों की भाँति विशाल नही है। तथापि यह अत्यन्त वैज्ञानिक दर्शन है।

साँख्य दर्शन में वर्णित प्रमुख दार्शनिक तत्व :

साँख्य दर्शन द्वैतवादी दर्शन है जो पुरुष और प्रकृति दो मूलतत्वों में विश्वास करता है। यह जगत कार्य-कारणों का संतान या प्रवाह है। इसका मूलकारण अवश्य होना चाहिये। आत्मा या पुरूष को हम किसी कार्य का कारण नही मान सकते हैं क्योकि यह कारण-कार्य श्रृंखला से परे नित्य चैतन्य स्वरूप है। कारण-कार्य श्रृंखला मे आगे बढ़ते हुये हम विचार करते है कि जगत का मूलकारण ऐसा होना चाहिये जिससे न केवल स्थूल पदार्थों (मिट्टी, पानी, पेड़, पहाड़) की ही उत्पत्ति संभव हो बल्कि सूक्ष्म वच, मन, बुद्धि, अहंकार जैसे सूक्ष्म तत्वों की भी उत्पत्ति संभव हो।

संसार का मूलकारण ऐसा होना चाहिये जो जड़ होने के साथ ही साथ सूक्ष्माविसूक्ष्म हो जो अनादि, अनंत और व्यापक रूप से जगत के पदार्थो का कारण हो, जिससे विषय उत्पन्न होते रह सकें। इसी मूल कारण को साँख्य दर्शन में प्रकृति की संज्ञा दी जाती है। समस्त विषयों का अनादि मूल स्रोत होने के कारण यह प्रकृति नित्य और निरपेक्ष है। यही वह तत्व है जिसके द्वारा संसार की सृष्टि और लय का चक्र प्रवाह निरन्तर चलता रहता है।

सत्व रज और तम से तीन गुण प्रकृति में रहते है। ''गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः'' इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। सत्व, रज और तम ये तीन गुण ये मूलदृष्य प्रकृति के उपादान तत्व है। ये गुण इसलिये कहलाते हैं कि ये रस्सी के तीनों गुणों (रेशों) की तरह आपस में मिलकर पुरूष के लिये बन्धन का कार्य करते है।

प्रकृति की सत्ता सिद्ध करने के लिये साँख्यकारिका में निम्नलिखित प्रमाण दिये गये है-

भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तिवः प्रवृत्तेश्च।
कारण कार्य विभागाद्विभागात् वैश्वरुपस्य।।

NOTES

भेदानां परिमाणात् : संसार के समस्त विषय-बुद्धि से लेकर पृथ्वी पर्यन्त देश काल से सीमित और अपने पूर्ववर्ती कारण पर आश्रित है। इसलिए उनका मूल कारण ऐसा होना चाहिये जो देशकाल से अपरिच्छिन्न और निरपेक्ष हो। अन्यथा मूल कारण की खोज में अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी। यह मूलकारण प्रकृति है।

समन्यवात् : संसार के समस्त विषयों का यह सामान्य धर्म है कि वे सुख-दुःख या मोह (उदासीनता) उत्पन्न करने वाले हैं। संसार के समस्त पदार्थ त्रिगुणात्मक प्रवृत्ति वाले हैं। इससे सूचित होता है कि उनके मूलभूत कारण में भी ये तीनों गुण मौजूद रहना चाहिये।

शक्तितः प्रवृन्तेश्च : सभी कार्य ऐसे कारणों से उत्पन्न होते है जिनमें ये (कार्य) अव्यक्त या बीजष्य से निहित थे असमर्थ कारण से किसी कार्य की उत्पत्ति नही होती। जिस प्रकार घर पर तेल आदि को उत्पन्न करने वाला मृत्पिण्ड तन्तु तथा तिल है उसी प्रकार महत् आदि को उत्पन्न करने वाला भी अव्यक्त (प्रकृति) है।

कारणकार्य विभागात् : कार्य कारण से उत्पन्न होता है और नष्ट होने पर पुनः उसमे बिलीन हो जाता है। इस तरह प्रत्यक्ष विषय अपने-अपने विशिष्ट कारणों से उत्पन्न होते है। वे विशिष्ट कारण भी अपर सामान्य कारणों से उत्पन्न होते है। इस तरह कारण-कार्य श्रृँखला में आगे बढ़ते हुये हम एक ऐसे मूलकारण पर पहुँचते है। जो समस्त वस्तुओं का मूलकारण हैं परन्तु उसका कोई कारण नही है। यह मूलकारण प्रकृति है।

अविभागात्वैंश्वरूपस्य इसी प्रकार प्रलयावस्था में समस्त वस्तुयें अपने मूलकारणों मे मिल जाती है, समाहित हो जाती है। पृथ्वी आदि तन्मात्र में, तन्मात्र अहंकार में, अहंकार वृद्धि में और बुद्धि प्रकृति में लीन हो जाती है।

इस प्रकार अन्ततोगत्वा प्रकृति की सत्ता सिद्ध होती है क्योकि सबका लय उसी में होता है परन्तु उसका लय किसी में नही होता।

उपरोक्त प्रमाणों से प्रकृति की सत्ता सिद्ध है।

NOTES

पुरुष (आत्मा) का स्वरूप :

द्वैतवादी साँख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति, दो मूलतत्व स्वीकार किये गये हैं। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका में पुरुष के स्वरूप पर निम्नवत् प्रकाश डाला गया है-पुरुष साक्षीद्व निस्त्रैगुण्य, माध्यस्य, उदासीन, दृष्टा तथा अकर्ता है। साक्षी पुरुष चेतन है। अतः विषयों को देखने वाला दृष्टा है। यह प्रकृति की परिधि से परे और शुद्ध चैतन्य स्वरूप है। किसी भी स्थिति में आत्मा में कोई क्रिया नहीं होती है। वह निष्क्रिय और अविकारी होता है। वह स्वयं भू, नित्य और सर्वव्यापी सत्ता है जो सभी विषयों से असंम्प्रक्त और रागद्वेष से रहित है। जितने कर्म या परिणाम हैं जितने सुख या दुःख है वे सभी प्रकृति और उसके विकायें (जेसे-शरीर, मन, बुद्धि आदि) के धर्म हैं। कत्रव्य और चैतन्य दोनों विपरीत हैं। प्रकृति गुणों के कारण कर्त्री और पुरुष निगुर्ण होने के कारण अकर्ता है। आत्मा को शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि समझ लेना सरासर भ्रम है। तब ऐसे अज्ञान के कारण पुरुष अपने को शरीर, इन्द्रिय, मन या बुद्धि समझ लेता है तब उसे आभासित होता है कि वह कर्म या परिवत्रन के प्रवाह में पड़कर नाना प्रकार के दुःखों के दलदल में फँस गया है।

पुरुष के अस्तित्व के लिये प्रमाण :

सांख्य कारिका में पुरुष के अस्तित्व के लिये निम्नलिखित प्रमाण दिये गये हैं-

संघत परार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादघिष्ठनात्।
पुरुषोस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थ प्रवृत्तेश्च।।

1. संसार के सभी संघात (सावयव) पदार्थ परार्थ (दूसरों) के लिये हैं। ये जिनके उद्देश्य के साधन हैं वे अचेतन नहीं हो सकते। क्योंकि अचेतन का कोई उद्देश्य नहीं होता है। अतः संघातों के अतिरिक्त चेतन पुरुष अवश्य है।

2. जो भी संघात होगा वह त्रिगुण अविवेकी होगा। पुरुष संघात से भिन्न है अतः वह निर्गुण विवेकी चेतन है। तात्पर्य यह है कि त्रिगुणादि से भिन्न भी कोई वस्तु है जो संघातरूप नही है वही पुरूष है।

NOTES

सभी जड़ द्रव्य किसी चेतन सत्ता के द्वारा ही नियन्त्रित या संचालित होते है जैसे-मशीन तभी कार्य करती है जब उसकी गतिविधि का नियामक कोई कारीगार रहता है। इसी तरह जड़, प्रकृति तथा उसके विकार बिना पुरूषों या सहायता के सृष्टि रचना नही कर सकते। उनकी क्रियाओं का निर्देशिक चेतन पुरूष आवश्यक है। यही पुरूष या आत्मा है।

संसार की सभी वस्तुयें भोग्य है। इनका अपने लिये कोई उपयोग नहीं। जैसे षट्रस से सम्पन्न व्यंजन इत्यादि दूसरो के भोग के लिये हैं। यदि उनका कोई चेतन भोक्ता (भोग करने वाला) नही रहें तो फिर उसका भोग कैसे संभव होगा?

जगत मे कम से कम कुछ पुरुष ऐसे हैं जो दुःखो के चक्र से मुक्ति पाने के लिये वास्तविक प्रयत्न करते हैं। सांसारिक विषयों के लिये यह संभव नही क्योंकि वे स्वतः दुःख के कारण होते है न कि उनकी निवृत्ति के। इसलिये दुःखमय जड़ जगत से परे आत्मा के अस्तित्व को मानना आवश्यक है। नही तो मोक्ष की अर्थक्ता क्या होगी? जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का क्या अर्थ रह जायेगा? इससे भी पुरूष या आत्मा का आस्तित्व सिद्ध होता है।

जगत की सृष्टि या विकास :

पुरुष और प्रकृति के संयोग से जगत की सृष्टि होती है। जब प्रकृति पुरुष के संसर्ग में आती है तभी संसार की उत्पत्ति होती है। अकेला पुरुष सृष्टि नहीं कर सकता क्योंकि वह निष्क्रिय है। इसी तरह अकेली प्रकृति सृष्टि नहीं कर सकती है क्योंकि वह जड़ है। सृष्टि के पूर्व तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। प्रकृति और पुरुष का संयोग होने से गुणों की साम्यावस्था में विकार उत्पन हो जाता है जिसे 'गुणक्षेम' कहते हैं।

पहले रजोगुण रजो स्वभावत क्रियात्मक है परिवत्रनशील होता है-तब उसके कारण और गुणों में भी स्पन्दन होने लगता है परिणामस्वरूप प्रकृति में एक

NOTES

भीषण आन्दोलन उठ खड़ा होता है। जिसमें प्रत्येक गुण दूसरे गुणों पर आधिपत्य जमाना चाहता है, क्रमशः तीनों गुणों का पृथक्करण और संयोजन होता है और न्यूनाधिक अनुपातों में उनके संयोगों के फलस्वरूप नाना प्रकार के संसारिक विषय उत्पन्न होते हैं।

पुरुष और प्रकृति के संयोग के फलस्वरूप सबसे पहले महत्तत्व या बुद्धि का प्रार्दुभाव होता है। बुद्धि के विशेष कार्य है निश्चय और अवधारण। बुद्धि के माध्यम से ही हम किसी विषय में निर्णय लेते हैं और वतः पर उसे क्रियान्वित करते हैं। यद्यपि रज और तम की अपेक्षा बुद्धि में सत्व का ही आधिक्य रहता है तथापि सत्व गुण के परिणाम में न्यूनाधिक्य पाया जाता है। जब बुद्धि में सत्व गुण का प्राबल्य होता है तब उससे सात्विक बुद्धि के फल होते हैं धर्म, ज्ञान, वैराग्य एवं ऐश्वर्य। परन्तु जब तमस का परिमाण बढ़ जाता है तब उस तामसिक बुद्धि से अधर्म, अज्ञान, आसक्ति आदि का प्राबल्य हो जाता है।

प्रकृति का दूसरा विकास अहंकार है जो महत्तत्व का परिणाम है। बुद्धि का में और मेरा का भाव ही अंहकार है। इसी अहंकार के कारण पुरूष मिथ्या भ्रम में पड़कर अपने को कर्ता (किसी कार्य का करने वाला), कामी (इच्छा करने वाला) और स्वामी (किसी वस्तु या विषय पर अधिकार रखने वाला) समझने लगता है।

अहंकार तीन प्रकार का माना जाता है- 1. सात्विक 2. राजसिक 3. तामसिक। सात्विक अहंकार में अपेक्षाकृत सत्वगुण की अधिकता होती है। रजस अहंकार में रजोगुण की प्रधानता होती है। और तामस अहंकार में तमोगुण की प्रबलता है। सात्विक अहंकार सें एकादस इन्द्रियों-पचं ज्ञानेन्द्रिय, 2. पंच कर्मेन्द्रिय 3 मन की उत्पत्ति होती है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ है-आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा। पंच कर्मेन्द्रियाँ है-हाथ, मुहँ, पैर, मलद्वार और जननेन्द्रिया। तामस अहंकार से पंच तन्मात्रों की उत्पन्ति होती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इन विषयों के सूक्ष्म तत्व तन्मात्र कहलाते हैं। पाँच विषयों के पाँच तन्मात्र होते है। ये इतने सूक्ष्म होते है कि इतना प्रत्यक्ष नही किया जा सकता। अनुमान के

ही द्वारा हमें उनका ज्ञान होता है। हाँ योगियों को उनका प्रत्यक्ष ज्ञान अवश्य हो जााता है।

NOTES

मन आभ्यंतरिक इन्द्रिय है जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनो का साथ देता है। मन ही उन्हें अपने-अपने विषयों में प्रेरित करता है। मन बहुत ही सूक्ष्म इन्द्रिय है परन्तु वह सावयव है। अतः एक ही साथ भिन्न-भिन्न इन्द्रियों के साथ संयुक्त हो जाता है।

पंच तन्मात्रों से पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। वह इस प्रकार है-

1. शब्द तन्मात्र से आकाश की उत्पन्ति होती है (जिसका गुण शब्द कान से सुना जाता है।)
2. स्पर्श तन्मात्र और शब्द तन्मात्र के योग से वायु की उत्पत्ति होती है जिसके गुण है शब्द और स्पर्श।
3. रूप तन्मात्र और स्पर्श-शब्द तन्मात्रों के योग से जल की उत्पत्ति होती है (जिसके गुण है-शब्द, स्पर्श, रूप, रस)।
4. गंघ तन्मात्र और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, तन्मात्रों के योग से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है (जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्घ-ये पाँचों गुण पाये जाते हैं) आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी इन पंच महाभूतों के विशेष गुण है क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्घ ।

सृष्टि का इतिहास मानों चौबीस तत्वों का खेल है जो प्रकृति से प्रारभ होता है और पंचभूतों से समाप्त होता है। संसार न तो परमाणुओं के अंधाधुंध संयोग का फल हैं न अंध कारण कार्य शक्तियों का निरर्थक परिणाम। सृष्टि एक विशेष प्रयोजन से होती है इसका उद्देश्य है नैतिक या आध्यत्मिक उन्नति का साघन होना। प्राकृतिक विकास का परम लक्ष्य है पुरूषों की मुक्ति। संसार में धार्मिक आचरण युक्त जीवन बिताने से ही पुरूषों को अपने स्वरूप का ययार्थ ज्ञान होता है।

4.2.7 मीमांसा और वेदतान्त :

आस्तिक दर्शनों मे मीमांसा अग्रगण्य है। कहीं-कहीं मीमांसा का तत्पर्य मीमांसा और वेदान्त दोनों अर्थ मान्य किये जाते हैं। अतः दोनों दर्शनो के पार्थक्य

NOTES

और वैमिण्डय को दृष्टिगत रखते हुये मीमांसा को पूर्व मीमांसा और वेदान्त के लिये उन्तर मीमांसा शब्द व्यवहृत होने लगा। पूर्वमीमांसा में वैदिक कर्मकाण्ड की पुष्टि की गयी है तथा वैदिक मन्त्रों की योगपरक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। वस्तुत मीमांसा दर्शन के दो मुख्य विषय है-

1. कर्मकाण्ड की विधियों मे असंगति दूर करने तथा संगति उत्पन्न करने के लिये व्याख्या पद्धति का निर्माण करना।
2. कर्मकाण्ड के मूलभूत सिद्धांतों का तर्कनिष्ठ प्रतिपादन करना।

मीमांसा दर्शन के प्रवत्रक महर्षि जैमिनी हैं। आप द्वारा रचित ग्रन्थ मीमांसा सूत्र या जैमिनी सूत्र है। मीमांसा सूत्र, सूत्र ग्रन्थों में पहला ग्रन्थ है इसकी सूत्र संख्या 2642 है जो षड्दर्शनों में पाँच दर्शनों के बराबर है। जैमिनी सूत्र पर शबर स्वामी ने शाबर भाष्य लिखा है। मीमांसा के इतिहास में तीन आचार्यों का नाम विशेष महत्वपूर्ण है- कुमारिल भट्ट, प्रभाकर और मुरारी मिश्र बौद्धों को परास्त कर वैदिक धर्म की रक्षा करने में कुमारिल भट्ट अद्वितीय थे। इन्होने शाबर भाष्य पर तीन ग्रन्थ लिखे। श्लोकवात्रिक, तन्त्रवात्रिक ओर दुप्टीका। कुमारिल भट्ट के टीकाकारों में पार्थसारथी मिश्र, माधवाचार्य और खण्डदेव का नाम महत्वपूर्ण है। प्रभाकर ये कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। इनके गुरू ने इनकी अलौकिक काल्पनिक शक्ति देखकर इन्हें 'गुरु' की उपाधि प्रदान की अतः इनका मत गुरुमत कहलाता है। इन्होने अपने स्वतन्त्र मत की स्थापना के लिये शाबर भाष्य पर दो महत्वपूर्ण टीकायें 'वृहती' और 'लध्वी' लिखी। इनके सम्प्रदाय के आचार्यों में शालिकनाथ प्रमुख हैं जिन्होंने ऋजुविमला, प्रकरण पंजिका और परिमिष्ट नामक ग्रन्थ लिखें।

मीमांसा में एक नये मत का प्रतिपादन करने वालों में आचार्य मुरारी मिश्र का नाम उल्लेखनीय है जिनके मत को मुरारी मत कहा जाता है। इसके ग्रन्थ हैं-त्रिपाठी नीतिनयन और एकादशाध्यायाधिकरण इसके अतिरिक्त मीमांसा दर्शन पर वाचस्पति मिश्र की न्यायकणिका, सुचरित्र मिश्र की काशिका, सोमेश्वर भट्ट की न्यायसुधा, सोमनाथ की मयूखमालिका लौमाक्षिभाष्कर का अर्थसंग्रह, केशव की मीमांसा बाल प्रकाश, नारायण का मानमेयादय आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

वेदान्त दर्शन साहित्य :

NOTES

भिन्न-भिन्न कालों और स्थानों में भिन्न-भिन्न वैदिक शाखाओं मे नाना उपनिषदें रची गयी। यद्यपि उन सभी में मूलतः विचार सादृश्य है तथापि भिन्न-भिन्न उपनिषदों में जिन प्रश्नों की विवेचना की गयी है और उनके जो समाधान दिये गये है उनमे कुछ भिन्नता भी पायी जाती है। अतएव कालक्रम से आवश्यक होने लगा कि भिन्न-भिन्न उपनिषदों में जो विचार है उनका विरोध परिहार कर सर्वसम्मत उपदेशों का संकलन किया जाय। इसी उद्‍देश्य से प्रेरित होकर बादरायण ने ब्रह्मसूत्र की रचना की। इसे वेदान्तसूत्र, शारीरिक सूत्र, शारीरिक मीमांसा या उत्तर मीमांसा भी कहते है। चूँकि वेदान्त सूत्र के सूत्र अत्यन्त संक्षित्त और सारगर्भित है परिणामस्वरूप कालान्तर में विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से वेदान्तसूत्र को देखा और समझा। प्रत्येक आचार्य यह सिद्ध करने में लगा रहा कि उसका भाष्य शारीरिक सूत्र का एकमात्र सटीक एवं सही भाष्य है। परिणामस्वरूप हर एक भाष्यकार एक-एक सम्प्रदाय के प्रवत्रक बन गये। वेदान्त सूत्र पर लिखे गये मुख्य भाष्य और उनके बाद निम्नवत है-

भाष्य	**भाष्यकार**	**वाद**
शांकर भाष्य	आचार्य शंकर	अद्वैतवाद
श्रीभाष्य	श्री रामानुजाचार्य	विशिष्टाद्वैत वाद
भाष्कर भाष्य	श्री भाष्कराचार्य	भेदाभेद वाद
पूर्णप्रज्ञ भाष्य	श्री मध्वचार्य	द्वैतवाद
सौरभ भाष्य	श्री निम्बाकीचार्य	भेदाभेद वाद
अणुभाष्य	श्री बल्लभाचार्य	शुद्धाद्वैत वाद
शैवभाष्य	श्री कन्ठ	शैव विशिष्टाद्वैत वाद
श्रीकर भाष्य	श्री पति	वीरशैव विशिष्टाद्वैत वाद
गोविन्द भाष्य	बलदेव	अचिन्त्य भेदाभेद वाद

इन सभी आचार्यों ने अपनी-अपनी दृष्टि से वेदान्त को देखा, समझा और सुना है तथा अपने भाष्य को ही यथार्थ श्रुतिमूलक बतलाया है।

सारांश

NOTES

भारतीय दर्शन के उपर्युक्त सांगोपांग विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय दर्शन साहित्य बहुत विशाल और समृद्ध है। भारतीय दार्शनिक भूमि अत्यन्त उर्वर रही है। यहाँ की भौगोलिग और जलवायविक विभिन्नता का प्रभाव यहाँ के निवासियों की जीवनशैली और चिंतन पर पड़ा परिणामस्वरूप यहाँ न केवल विविध मतमतान्तरों की उत्पत्ति का सुयोग प्रात्त हुआ बल्कि जनजीवन में सहज व्याप्त सहिष्णुता और परस्पर पूरकता, सहजीवन के परिणामस्वरूप उन्हें निरन्तर आगें बढ़ने का अवसर भी प्रात्त हुआ। इसी कारण हम देखते है कि दार्शनिक जगत में किसी नये विचार की उत्पत्ति होते ही उस पर सूत्र, भाष्य, भाष्यों पर टिप्पणी टिप्पणियों पर टीकायें और उस पर टीकायें लिखी गयीं इतना ही नही दर्शन जीवन के इतना अधिक निकट और व्यावहारिक रहा है लगभग प्रत्येक मतों के अपने-अपने सम्प्रदाय बन गये और उनके अनुयायियों की संख्या लाखों-करोड़ों में हो गयी। धार्मिक असहिष्णुता या धर्म जन्य सम्प्रदायवाद को यहाँ है सहिष्णु धरती ने कभी पनपने ही नही दिया। यद्यपि वैचारिक स्तर पर खूब तर्कवाण चले विद्धानों ने प्रतिपाक्षियों को परास्त करने में जीतोड़ प्रयास किया परन्तु दार्शनिक एवं धार्मिक सहिष्णुता की चादर कभी मैली नहीं होने पायी। बौद्धों और मीमांसकों की वैचारिक संघर्ष इतिहास प्रसिद्ध है। इस वैचारिक संघर्ष की एक और विशेषता रही है। इससे न केवल सम्बधित -मतों/धर्मों के दार्शनिक साहित्य का ही विकास हुआ। बल्कि सुदृढ़ तर्क और वैज्ञानिक पद्धति पर सम्बंधित दर्शन का भव्य प्रासाद खड़ा हो सका।

उक्त सब विशेषताओं के होते हुये भी आज हमें आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है। दर्शन को तत्वमीमांसा के अगोचर एवं अदृश्य भावभूमि से उतारकर जनसामान्य के व्यावहारिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है। दर्शन के नैतिक पक्ष को और मजबूर करने की आवश्यकता है जिससे समाज एवं राष्ट्र को भोगवाद एवं भ्रष्टाचार, कदाचार की आँधी से बचाया जा सके।

शब्दावली :

पूर्वमीमांसा : वह दर्शन जिसमें वैदिक विचारधारा कर्मकाण्ड का पोषण और परिवर्द्धन किया गया है। **पूर्वमीमांसा** कहलाती है।

उत्तरमीमांसा : से तात्पर्य वेदान्त से है। वह दार्शनिक विचारधारा जिसमें वैदिक ज्ञानकाण्ड का समर्थन एवं पोषण किया गया है। उत्तरमीमांसा या वेदान्त कहलाती है।

उपनिषद : आरण्यकों के अन्तिम भाग को उपनिषद कहा जाता है। उपनिषद वेद के दार्शनिक चिन्तन की चरम परिणति को प्रस्तुत करते हैं। उपनिषद का शाब्दिक अर्थ उपनिषद वे साहित्य हैं जिन्हें शुरू के समीय बैठकर भक्तिपूर्वक सुनने से कर्म के बन्धन ढीले पड़ जाते है। साथ ही हमारा अज्ञान भी नष्ट हो जाता है।

प्रस्थान त्रयी : उपनिषद, गीता और ब्रह्म सूत्र को प्रस्थान त्रयी कहा जाता है। प्रस्थान शब्द का अर्थ है जिनके ऊपर ब्रह्म विद्या आधारित है।

सूची प्रश्न

1. भारतीय दार्शनिक साहित्य के उद्भव और विकास पर एक निबंध लिखिये।
2. वैदिक साहित्य से आपका क्या तात्पर्य है? वैदिक साहित्य के विकास के विविध आयामों का निरूपण कीजिए।
3. भगवद्गीता में वर्णित योग की अवधारणा का निरूपण कीजिये।
4. जैन एवं बौद्ध दर्शन साहित्य के विकास पर प्रकश डालियें।
5. न्याय एवं वैशेषिक दर्शन साहित्य के विकास का खाका प्रस्तुत कीजिये।
6. पूर्वमीमांसा मे वैदिक कर्मकाण्ड का निरूपण एवं समर्थन किया गया है। वर्णन कीजिए।
7. उत्तर मीमांसा या वेदान्त में ज्ञानकाण्ड का समर्थन किया गया है। इस तथ्य की व्याख्या कीजिये।

NOTES

प्रदन्त कार्य

1 आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों के भेद का आधार क्या है? नास्तिक दर्शनों की सूचीबद्ध व्याख्या कीजिये।

2 भारतीय दर्शन समन्वयात्मक और सहिष्णु है। इस तथ्य की विवेचना कीजिये।

3 न्याय दर्शन भारतीय दर्शन का तर्कशास्त्र है। न्याय के दार्शनिक साहित्य पर प्रकाश डालते हुये उक्त तथ्य के समर्थन में तर्क दीजिए।

4 अद्वैत वेदान्त, भारतीय वेदान्त दर्शन का मुकुटमणि है। इस तथ्य की विवेचना कीजिये।

उपयोगी ग्रन्थ

1 डॉ. जिन्तेद्र शर्मा : समकालिक अद्वैत चिन्तन बी.एस.शर्मा एण्ड ब्रदर्स, आगरा।

2 डॉ. रामस्वरूप सिंह नौलखा : आचार्य शंकर : ब्रह्मवाद किताबघर, आचार्य नगर, कानपुर।

3 डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' : सर्वदर्शन संग्रह चौखम्मा प्रकाशन वाराणसी।

4 डॉ. नन्दकिशोर देवराज : भारतीय दर्शन, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ।